विषय-सूची

* ओ३म् *

(सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष ३१ | जनवरी १९५७, पोष २०१३ वि०, दयानन्दाब्द १३३ | अङ्क ११

वैदिक प्रार्थना

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ऋ० १।८।६।८॥

व्याख्या—हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो "मा, नो, व०" हमारे ज्ञान-वृद्ध वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो तथा "मा, नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो "मा, नस्तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान, हमारी सेना के शूरों में 'हविष्मन्तः' यज्ञ के करने वाले इनमें, "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो। हम लोग आपको 'सदमित्त्वा, हवामहे' सर्वदैव आह्वान करते हैं, हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥५०॥५१॥

सम्पादकीय
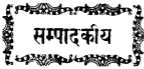
दलितोद्धार और ईसाई प्रचार निरोध

भारत में ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रचार की समस्या पर ज्यों-ज्यों गहरी विचार दृष्टि डाली जाती है, त्यों-त्यों यह बात स्पष्ट होती जाती है कि ईसाइयों की असाधारण सफलता का मुख्य कारण आर्य जाति की अपनी सामाजिक निर्बलता है। यह वस्तुतः कलंक की बात है कि आज तक भी हमारी जाति से छुआछूत और नीच ऊंच की भावनायें विदा नहीं हुई। ईसाई पादरियों को सुलभ सफलता मिलने के दो क्षेत्र हैं। एक दलित जातियों में और और दूसरा उन व्यक्तियों में जिन्हें पिछड़ा हुआ कहा जाता है। यदि पक्षपात हीन दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि दोनों ही हमारी धार्मिक और सामाजिक अवनति के परिणाम हैं। वेदों में मनुष्य मात्र को 'अमृतस्य पुत्राः' अमृत प्रभु के पुत्र कहा है, भगवद्गीता में मनुष्यमात्र प्राणीमात्र को सम दृष्टि से देखने का उपदेश दिया गया है, सब बातें सुनते और समझते हुए भी अभी तक बहुसंख्यक हिन्दुओं के हृदय भेद भावनाओं से लबालब भरे हुए हैं, यह देख कर अत्यन्त खेद होता है। यदि कोई किसान अपनी हरी भरी खेती के चारों ओर मज़बूत बाड़ न लगाये तो स्वभावतः जंगली पशु उसे खाकर बरबाद कर देंगे। खाने वालों के विरुद्ध फर्याद करने का जितना अधिकार उस अदूरदर्शी किसान को होगा, उतना ही अधिकार हमें भी अन्य मतों के प्रचारकों के विरुद्ध फर्याद करने का है। हमने अपने धार्मिक क्षेत्र को चारों ओर से अरक्षित छोड़ रखा है। यही कारण है कि बहुत कोलाहल पूर्ण शाब्दिक प्रचार होने पर भी हम आर्य जाति के लोगों को लाखों की संख्या में मत मतान्तरों में जाने से नहीं रोक सके।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि धर्म क्षेत्र की सीमायें भौतिक दीवारों से सुरक्षित नहीं की जा सकतीं। उसकी रक्षा के लिये मानसिक और सामाजिक सद्भावनाओं की बाढ़ आवश्यक है। सदियों के कुसंस्कारों ने उस बाढ़ को सर्वथा तोड़ दिया है। ऊंच-नीच, छुआछूत और जात पात की रूढ़ियों ने आर्य जाति के सामाजिक शरीर को इतना निर्बल बना दिया है, कि लगभग एक शताब्दी के सतत परिणाम से भी सुधारक लोग उसे बाहर के आक्रमणों से रोकने की शक्ति उत्पन्न नहीं कर सके।

आर्य जन प्रायः पूछते हैं कि अब हमारे सामने सक्रिय कार्यक्रम कौन सा है?

यह प्रश्न भी किया जाता है कि ईसाई मिशनरियों के प्रचार-प्रवाह को रोकने का उपाय क्या है?

वस्तुतः दोनों प्रश्नों का उत्तर एक ही है। अपने पीछे पड़े भाई बहिनों को हाथ से पकड़ कर छाती से लगाना, उन्हें बराबर के मानवीय अधिकार देना, उनके प्रति घृणा की भावना का समूल नाश कर देना--यही आज की परिस्थिति में आर्य समाज का क्रियात्मक कार्यक्रम है, और यही ईसाई प्रचार की बाढ़ को रोकने का एक मात्र उपाय है। सोचकर देखिये कि उन लोगों को ईसाइयों की ओर ले जाने वाली कौन सी वस्तु है? न वे बाइबिल के सिद्वान्तों को जानते हैं, और न उनका ईसाई समाज से नाता है। उन्हें ईसाई प्रचारकों की ओर धकेलने वाले हम हैं, जो आज भी उन्हें अपने से अलग, और नीचा समझते हैं। हम करोड़ों रुपये खर्च करके भी आर्य जाति के टुकड़ों को मतमतान्तरों के जाल में फंसने से नहीं बचा सकते यदि हम उनके प्रति अपने व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन न कर दें। आर्य समाज में उस आमूल चूल परिवर्तन का पारिभाषिक नाम "दलितोद्धार" है। कई वर्षों से, यह समझ कर कि "हरिजनों" को राजनीतिक अधिकार दिलाने का काम सरकार ने ले लिया है, आर्य समाजों ने

उधर ध्यान देना छोड़ दिया है। यह भ्रम है कि राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने से दलितों की समस्या घटेगी। यदि हृदयों में परिवर्तन न हुआ तो विशेष राजनीतिक अधिकार उस समस्या को अधिक तीव्र करने का कारण भी बन सकते हैं। यह विशेष राजनीतिक अधिकारों की ही कृपा है कि ऐसे सैकड़ों वर्ग, जो पहले अछूत या पिछड़े हुए कहलाने को 'गाली' समझते थे, आज भाग २ कर सरकारी दफ्तरों की "अनुसूचित" जातियों में अपने नाम लिखा रहे हैं। बात यह है कि रोग का असली इलाज छुआछूत और ऊंच नीच की भावना का सर्वथा नाश है शेष सब क्षणिक उपायों का नाम "लीपा पोती" ही रक्खा जा सकता है।

अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य समाज और आर्य जन सर्वात्मना दलितोद्धार के स्थगित कार्यक्रम को फिर से हाथ में लेकर समाज सुधार और जाति रक्षा के पवित्र कार्य में अग्रसर हो।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

लौकिक राज्य और बौद्ध धर्म

संविधान के अनुसार भारत का राज्य 'लौकिक' है। लौकिक का अभिप्राय यह माना जाता है कि वह किसी धर्म विशेष का पक्षपाती नहीं है। जब कभी भारत सरकार के सम्मुख कोई ऐसा प्रश्न आता है, जिसमें देश के बहुमत रखने वाले धर्मानुयायियों का सम्बन्ध हो तो प्रायः यह उत्तर दिया जाता है कि क्योंकि भारत का राज्य पूर्ण रूप से लौकिक अर्थात् निरपेक्ष है, इस कारण किसी धर्म विशेष की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता। यह देख कर सर्वसाधारण देशवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ है कि हमारे लौकिक राज्य के कर्णधारों ने बुद्ध जयन्ती के अवसर पर महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म पर जितनी आस्था प्रकट की है, उतनी शायद किसी ऐसे देश में भी प्रकट न की गई होगी जिसका राजधर्म ही बौद्ध है। सामान्य जनता को इसमें कुछ परस्पर विरोध प्रतीत होता है। तर्क और आलोचनात्मक दृष्टि से जांचने पर प्रतीत होगा कि यह परस्पर विरोध है भी, परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि राजनीतिज्ञों की दृष्टि से धर्म सदा ही उपयोगिता की वस्तु रहा है। यथार्थता की वस्तु नहीं। अंग्रेजी सरकार मुसलमानों का पक्षपात करती थी, उसका यह कारण नहीं था कि अंग्रेज हिन्दू धर्म या ईसाइयत की अपेक्षा इस्लाम को अधिक पसन्द करते थे, अपितु यह कारण था कि वे हिन्दुओं की महत्वाकांक्षाओं को दबाने के लिये मुसलमानों को बढ़ावा देना आवश्यक समझते थे। राजनीति ने धर्म को प्रायः अपना औजार समझा है। भारत सरकार द्वारा बुद्ध जयन्ती पर धूमधाम मचाने और देश की पुष्कल धन राशि व्यय करने का मूल कारण भी यही है। इस समय भारत सरकार पूर्व के देशों का निकट सहयोग प्राप्त करने के लिये लौकिक होते हुए भी बौद्ध धर्म को बढ़ावा देना उचित समझती है। कल को यदि राजनीतिक उपयोगिता के लिये किसी अन्य सम्प्रदाय को बढ़ावा देने की आवश्यकता हुई तो शायद वह भी किया जा सकेगा। सारांश यह कि धर्म निरपेक्षता और धर्म सापेक्षता दोनों राजनीतिज्ञों की कला के अंग हैं। यह देख कर खेद अवश्य होता है कि हमारा आदर्शवाद राज्य भी उपयोगिता वाद का शिकार बनने से न बच सका, परन्तु इसमें आश्चर्यित होने की कोई बात नहीं। यह संसार है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

*

❀ सम्पादकीय टिप्पणियां ❀

शव-दाह की लोक प्रियता

वेदों में पुष्कल काष्ठ और दुर्गन्ध नाशक सुगन्धित पदार्थों से तथा शिष्ट विधि से शव-दाह का विधान है। आर्य जाति में यही प्रथा प्रचलित और प्रशस्त रही है। आर्यों के देशान्तरों में जाकर बस जाने से यह प्रथा भी उनके साथ गई। प्राचीन यूनान, मिश्र और रोम इत्यादि के इतिहास से यह बात भली भांति प्रमाणित है। दुर्भाग्य से मजहबों की अन्ध-विश्वास पूर्ण शिक्षाओं के कारण इस वैज्ञानिक और स्वस्थ प्रथा का ह्रास हुआ और गाड़ने, शव को जल में बहा देने वा पशु-पक्षियों को खिला देने की घृणित प्रथाओं का उदय हुआ।

युरोप में ईसाई मत के प्रचार के साथ दाह संस्कार प्रथा का अन्त हो गया था। ईसाइयों का यह विश्वास है कि 'ईसा कब्र से उठ खड़े हुए थे। प्रभु ईसा की कृपा से अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हो सकता है इसलिए शव को जला कर नष्ट कर देना ठीक नहीं है। इस अध-विश्वास का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि समस्त ईसाई-जगत में शव दाह कानूनी अपराध माना जाने लगा। इस्लाम में भी कुछ इसी प्रकार की मान्यताएं हैं। उसमें बताया गया है कि अल्लामियां कब्र में पड़े हुए मुर्दों में कयामत के दिन रूह फूकेंगे। इस प्रकार उस दिन सभी लोग पुनः जीवित हो उठेंगे। इस अ ध-विश्वास के कारण पूर्व के समस्त मुस्लिम देशों में शव दाह प्रथा का परित्याग कर दिया गया। परन्तु व्यवहारिकता और स्वास्थ्य विज्ञान इस अ ध विश्वास का साथ न दे सके। गाड़ने की प्रथा स्वास्थ्य विनाशक सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त गाड़ने के लिए बहुत सी भूमि की आवश्यकता होती है जिसका सदुपयोग प्रजोपयोगी अन्यान्य कामों में हो सकता है। युद्ध में सैनिकों के मरने पर जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है। बड़ी २ खंदक खोदकर उनमें लाशें डालनी पड़ती हैं। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय यह समस्या विकट रूप में उपस्थित हो जाने और ईसाइयत का दबदबा कम हो जाने पर चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों को गाड़ने की प्रथा के प्रति अपनी अरुचि का प्रकाश करने का सुअवसर हाथ लगा। परन्तु उनका विरोध बहुत आगे न बढ़ सका। वह समय आते देर न लगी जब चिकित्सकों और वैज्ञानिकों को इस प्रथा के विरुद्ध अपनी आवाज ऊंची करने के लिए विवश होजाना पड़ा। १८७४ में इटली के मिलन नगर में उनका एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें यह फैसला हुआ कि शव-दाह का आन्दोलन चलाया जाय। इसके लिए विविध देशों में समितियां संगठित की गईं।

इंग्लैंड में इस आन्दोलन से पूर्व ही १६५८ में इस विषय की चर्चा चल पड़ी थी। सर टामस ब्राउन ने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी जिससे बड़ा तहलका मचा। १८७४ में सर हेनरी टामसन ने ऐसी भट्टी बनाई जिसमें शव के भस्म होने में २ घन्टे लगते थे। १८८२ में कप्तान हैनहम के २ कुटुम्बी मरे जो अपनी वसीयत में लिख गए थे कि उनके शव का दाह किया जाय। पर सरकार ने इसकी अनुमति न दी। १८८३ में इस सम्बन्ध में एक अभियोग चला और उसमें यह निर्णय हुआ कि शव दाह कानून विरुद्ध नहीं है पर वह इस ढंग से किया जाना चाहिए जिससे दूषित वायु फैलने न पाए। शव दाह में एक आपत्ति यह भी की गई कि किसी के मरने के बाद यदि यह पता लगे कि उसकी मृत्यु विष खाने से हुई है तो शव दाह से शव की परीक्षा नहीं हो सकती।

इस आपत्ति को दूर करने के लिये यह नियम बनाया गया कि शव-दाह की अनुमति प्राप्त करने से पहले २ डाक्टरों के प्रमाण पत्र प्राप्त करने चाहिएं कि मृत्यु विष से नहीं हुई है। १९०२ में शव दाह का कानून ही बन गया। इस प्रतिबन्ध

के उठ जाने से युरोप और अमरीका के बहुसंख्यक लोगों ने चैन की सांस ली। यहूदियों आदि ने जिनमें प्राचीन काल में दाह प्रथा प्रचलित थी इस प्रथा को अपनाने में बड़ा गौरव अनुभव किया। धीरे २ इस प्रथा के अनुकूल वातावरण बनता गया। आज शव दाह की प्रगति को देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा है। इग्लैंड में इस प्रगति पर स्वयं राज्याधिकारी चकित हैं। वहां गत वर्ष प्रति ४ में से १ शव की दाह क्रिया हुई और कुल १ लाख ४१ हजार दाह संस्कार हुए। सन् १९३९ और ११४५ में ये संख्याएं क्रमशः १६ हजार और ४३ हजार थी। जर्मनी और अमेरिका में भी यह प्रथा द्रुत गति से स्थान बनाती जा रही है।

देशदेशान्तर में इस प्रथा का पुनरुज्जीवन इस बात का द्योतक है कि मानव जाति के इतिहास की शृंखला एक ही है और यह प्रथा संसार को आर्य जाति एवं भारत की महान् देन है। यह ठीक है कि इस समय युरोप और अमेरिका आदि देशों की शवदाह की प्रणाली स्वस्थ और शिष्ट रूप लिए हुए नहीं है शव को भट्टियों में या बिजली से जला देना ठीक नहीं जान पड़ता। इसमें पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। फिर भी इसका अंध-विश्वास की दलदल में से निकल आना बड़ा स्वागत योग्य है। निश्चय ही जिस अनुपात में उसकी गति वेगवती बनेगी उसी अनुपात में यह शिष्ट और स्वास्थ्य के नियमों के अनुकूल बनती जायगी।

तथागत की भविष्य वाणी

हिन्दुस्तान, देहली के यत्र तत्र सर्वत्र के स्तम्भ में उपर्युक्त शीर्षक से लिखता है:—

अभी कुछ दिन हुए तिब्बत के धर्म गुरु दलाई लामा ने दिल्ली में आयोजित बौद्ध गोष्ठी में कहा था 'भगवान बुद्ध ने किसी एक सूत्र में भविष्यवाणी की थी कि मेरे परिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद बौद्ध धर्म लाल चेहरे वाले लोगों के देश में बहुत फैलेगा। पहले कुछ तिब्बती विद्वान इसका अर्थ यह लगाते थे कि यह भविष्यवाणी तिब्बत के लिये है लेकिन एक विद्वान शाक्य श्री ने इसका दूसरा अर्थ लगाया है। उनके अनुसार यह धर्म यूरोप में फैलेगा और इसके कुछ लक्षण अब दिखाई पड़ने लगे हैं।

तथागत की इस भविष्यवाणी के फलीभूत होने के कौन से लक्षण परमपावन दलाईलामा को दिखाई दिये, यह उन्होंने नहीं बताया। शायद उनका संकेत इस तथ्य की ओर था कि पश्चिम के लोग बुद्ध के संदेश में अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं और इसका अध्ययन करने लगे हैं। लेकिन हर्ष का विषय है कि तथागत की भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करते हुये पश्चिमी यूरोप में हेमवर्गवासी एक ३९ वर्षीया महिला बाकायदा अपने सुनहरे बालों को कटवाकर बौद्ध भिक्षुणी बन गई है। लन्दन में दीक्षा ग्रहण करते हुये उन्होंने अपने पहले नाम कुमारी लीसा शैरोडर का परित्याग करके नय नाम कुमारी चिन्तावासी अपना लिया है और अपनी सारी सम्पत्ति जिसमें एक तिमन्जला मकान भी है, बौद्ध केन्द्र को दान में दे दिया है। वह एक मनोविज्ञान शास्त्री है और बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने का कारण उन्होंने यह बताया है कि वह जो मनोविज्ञान का अध्ययन कर रही थीं बौद्ध धर्म उसको स्वाभाविक और तर्कसंगत परिणति है।

लेकिन इसतरह इक्के दुक्के यूरोपवासीके बौद्ध बनने से तो तथागत की भविष्यवाणी को पूरा होने में युगों नहीं तो वर्षों लग जायेंगे। हां यदि इन लाल चेहरे वालों को वैसी ही सद्बुद्धि प्राप्त हो जाये जैसी कि बम्बई के ५०,००० से अधिक हरिजनों को तो बेड़ा जल्दी पार हो जायेगा। कहते हैं कि अनुसूचित जातियों के स्वर्गीय नेता अम्बेडकर का इरादा १६ दिसम्बर को बम्बई आकर वहां के समस्त हरिजनों को

सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म में दीक्षित कराने का था। लेकिन इसी बीच वह निर्वाण को प्राप्त हो गये और उनकी इच्छा अपूर्ण ही रह गयी। अपने दिवंगत नेता की अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिये उनकी अन्त्येष्टि के समय ५०,००० से ऊपर हरिजन बुद्ध की शरण में चले गये।

इस अवसर पर एक बौद्ध भिक्षु ने सामूहिक रूप से दीक्षा देते हुये उन्हें जो चार शपथ दिलाईं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। चारों शपथ इस प्रकार हैं। (१) हम शपथ लेते हैं कि हम अब किसी हिन्दू देवी या देवता को नहीं मानेंगे, (२) हम शपथ लेते हैं कि हम किसी भी रूप में किसी हिन्दू देवी-देवता की पूजा नहीं करेंगे, (३) हम राम, कृष्ण, गणेश-महादेव तथा सत्य-नारायण जैसे किसी हिन्दू देवता की पूजा की निन्दा करते हैं, तथा (४) हम शपथ लेते हैं कि हम कोई हिन्दू-रस्म जैसे कि सत्यनारायण पूजा, मंगलागोर और गणेश पूजा नहीं मनायेंगे।

यह स्वाभाविक ही है कि हरिजनों पर बौद्ध धर्म की पालिश चढ़ाने से पहले हिन्दू धर्म की 'कालिख' खूब कसकर छुड़ाना अत्यन्त आवश्यक समझा जाये वरना नई पालिश की वह चमक उन पर न आ पायेगी जो आनी चाहिये। इस चमक को हमेशा कायम रखने के लिये यदि एक गुरुमन्त्र उन्हें और दे दिया जाता तो बेहतर होता और वह यह कि आचार- व्यवहार की किसी बात के बारे में तुम्हारे हृदय में सशय हो कि क्या करें तो हमेशा उसके विपरीत आचरण करो जो कि तुम नये धर्म में दीक्षित होने से पूर्व करते थे। इस सिद्धान्त को निम्न लिखित दृष्टान्त से समझा जासकता है: किसी धर्म के अनुयायियों के हृदय में संशय पदा हुआ कि यदि खाते खाते कोई कौर जमीन पर गिर जाये तो उसे खाया जाये या नहीं। वे अपने गुरु के पास पहुंचे और उनसे व्यवस्था मांगी। धर्म गुरु ने पहले यह मालूम करने का आदेश दिया कि दूसरे धर्म वाले लोग क्या करते हैं। जब उन्हें सूचना दी कि वो तो धरती पर गिरा हुआ कौर फिर उठाकर नहीं खाते तो धर्म गुरु ने व्यवस्था दी तब तुम्हें जरूर जमीन पर गिरा कौर खा लेना चाहिए।

हरिजनों को तो बौद्ध धर्म ग्रहण करने से हिन्दूधर्म के 'अत्याचार से मुक्ति' और चित्त को शांति मिल ही गई है। कुछ और लोग भी इस नये घटना विकास पर राहत की सांस ले रहे हैं। वे भगवान से उस दिन को शीघ्र लाने की प्रार्थना कर रहे हैं जबकि सभी हरिजन भाई बुद्ध की शरण में चले जायेंगे। उनकी इस प्रार्थना का रहस्य यह है कि अब तो सरकारी नोकरियों की खोज में रहने वालों को इस बाधा का सामना करना पड़ता है कि पहले अनुसूचित जातियों वालों को लिया जायेगा तब यह बाधा दूर हो जायेगी क्यों जब न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। इस समय वे हरिजन भी जो बौद्ध होने का इरादा नहीं रखते, खुशियां मना रहे हैं क्योंकि उनके मार्ग से अनेक प्रतिद्वन्द्वी हट जायेंगे। उन्होंने यह कहना शुरु भी कर दिया है कि बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद ये लोग अनुसूचित जातियों को मिलने वाली रियायत लेने के हकदार नहीं।

लेकिन बुद्ध की शरण में जाने वाले हरिजनों को इन तुच्छ बातों की परवाह नहीं। जिस प्रकार तथागत ने 'मार विजय' की थी ये भी इन प्रलोभनों से डिगेंगे नहीं और अपने नये धर्म पर जमे रहेंगे।

शुभ मुहूर्त

बम्बई के नये राज्य ने शपथ लेने के लिये ३१ अक्टोबर नियत की थी जब कि केन्द्रीय शासन ने इस कार्य के लिये १ नवम्बर निश्चित की थी। इसे हम फलित ज्योतिष का आदेश ही

मान सकते हैं। यह पहला अवसर नहीं है जब-कि सरकारी समारोह अशुभ मुहूर्तों से हटाये जाकर शुभ मुहूर्तों में परिवर्तित हुए हों। इस प्रकार की प्रथा वांछनीय नहीं है। इस प्रकार की प्रथा से उन्नत व्यक्तियों और उन्नत राष्ट्रों की दृष्टि में भारत का वर्चस्व नहीं बढ़ सकता। यह सत्य है कि भारतवर्ष ही अकेला इस प्रकार के बुद्धि विरोधी विचारों का शिकार नहीं है। महान् हिटलर भी महत्व पूर्ण निश्चय करते समय ज्योतिषियों से सलाह किया करता था। परन्तु उसकी तथा उसके साम्राज्य की जो हजारों वर्षों तक रहने वाला बताया गया था जो गति हुई वह सबके सामने है। छोटे लोग प्रायः बड़े लोगों के उदाहरण का अनुसरण करते हैं। बड़े लोगों का इस प्रकार का उदाहरण संक्रामक रोग का रूप ले सकता है। यदि इंजिन ड्राइवर्स इंजिनों के चलाने से, डाक हरकारे डाक बांटने से, करदाता कर देने से, विद्यार्थी गण परीक्षाओं में बैठने से, वायुयान के चालक श्रीयुत वी० के० मेनन को महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में ले जाने से इस आधार पर इन्कार करदें कि शुभ मुहूर्त नहीं है तो जो दुरवस्था उत्पन्न हो सकती है उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

भारत में ईसाई प्रचार के विरुद्ध गम्भीर आरोप

भारत मे ईसाई प्रचार पर जो गम्भीरतम आरोप लगाये जाते हैं, उनमें से एक यह है कि ईसाई प्रचारक देशवासियों को राष्ट्र विरोधी बना देते हैं। ईसाई प्रचार के प्रष्ठ पोषक और समर्थक अन्य समस्त आरोपों की अपेक्षा इस आरोप का बड़ी सतर्कता और प्रबलता से खंडन करते हैं। गांधी जी ने ईसाई प्रचारकों को कह दिया था कि भारत में ईसाइयत की प्रवृत्ति लोगों को राष्ट्र विरोधी और युरोप भक्त बनाने की है (क्रिश्चियन मिशन प्र० १६०) भारतीयों को राष्ट्र विरोधी बनाने की सर्वोत्तम साक्षी एक भारतीय द्वारा लिखित Heritage of an Indian Christian 'एक भारतीय ईसाई की बपौती' नामक पुस्तक से उपलब्ध होती है जिसमें लेखक ने युरोप को अपना प्रेरणा स्थान बताया है। नियोगी कमेटी के समक्ष ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे उपर्युक्त आरोप भली भांति प्रमाणित होता है।

जशपुर (मध्य प्रदेश) के क्षेत्र में कमेटी के सदस्यों से यह शिकायत की गई कि ईसाई प्रचारकों ने गाव के लोगों को कहा कि 'जवाहर राज्य आ गया है और दुःखों को साथ लेकर आया है।' उन्होंने भोले भाले अपढ़ एवं निर्धन लोगों को बहकाया कि 'जवाहर राज्य नष्ट होगा और ईसा का राज्य आयेगा।' ईसाई पादरियों ने इस आक्षेप को स्वीकार नहीं किया। फिर भी होशंगाबाद के जिले में खिरकिम्पा नामक एक व्यक्ति ने अपने लिखित बयान में कहा 'जय हिन्द' के उच्चारण से ईसाई पादरियों को ठेस लगती है। इसके स्थान में उन्होंने 'जय यीशु' रखना चाहा। देहातों में 'राजाओं का राजा' नामक फिल्म दिखा कर ईसा की प्रभुता प्रतिपादित करने का यत्न किया जाता है। कमेटी के सदस्यों ने बुलदाना नामक स्थान पर इस फिल्म को स्वयं देखा। जबलपुर के एक स्कूल में ईसाइयों ने एक नाटक खेला जिसमें राष्ट्र ध्वज पर ईसाई ध्वज की महत्ता अंकित की गई थी। छिद्दी नामक किसान को (मण्डला स० ७) ईसाई मत की शिक्षाओं के पढ़ने और फैलाने के लिए प्रतिमास १३) और मिट्टी के तेल की २ बोतलें मिलती थीं। उसे ताकीद की गई कि वह 'रामराम' की जगह 'जय यीशु' के अभिवादन का प्रयोग किया करे। १४ जून १९५४ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में डा० एल्विन का एक पत्र छपा था। उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि जो भारतीय पादरियों के प्रभाव में आ जाते हैं वे 'जयराम जी' की जगह 'जय यीशु' कहने लग जाते हैं।

रांची के 'घर बन्धु' नामक ईसाई पत्र के जून १९५२ के अंक में पृष्ठ १२ पर 'निराला राज्य

और उसके कर्मचारी 'शीर्षक लेख में लिखा गया है :—

आज हमारे सामने सरगुजा का विस्तृत राज्य है जिसे मसीह के राज्य में मिलाना है।'

उसी पत्र के सितम्बर १९५३ के अंक में पृष्ठ १३ पर अंकित निम्न लिखित पंक्तियां ध्यान देने योग्य है :—

'गत ७ मास के भीतर बपतिस्मा पाये हुओं की संख्या १९५३ जुलाई तक की १५५० से ज्यादे ही है। प्रान्तीय प्रधान मंत्री मान्यवर आर० ऐस० शुक्ला के कुछ विरोधी आरोपण होते हुए भी प्रतिमाह धर्म्म के भूखे प्यासे जनता पवित्र बपतिस्मा के जरिए नया जन्म पाके प्रभु की मंडली में ...

'निष्कलंक' पत्र ने अपने १५ अगस्त १९५० के अंक में पृष्ठ १२४, १२५ पर गोवा की मुक्ति के विरुद्ध लिखा :—

'.....क्यों भारत चाहती है कि पोर्तुगाल उस पर अपना अधिकार जमाया रखना अब छोड़ दे जिस पर उसने ४०० वर्ष तक अधिकार जमा रखा है। बात तो है भाव भावना की।

सच्ची बात तो यह दिखाई पड़ती है कि गोवा के अधिकाँश निवासी वर्तमान दशा से बहुत ही संतुष्ट हैं। गोवा के मुट्ठी भर लोग और हिन्द में रहने वाले थोड़े से गोवन गोवा के हिन्द में शामिल होने के लिए चिल्लाते हैं ... यह नीति न्याय युक्त नहीं है और जो लोग इस नीति का अनुसरण कर रहे हैं वे भारत माता की अनीति कर रहे हैं।"

जब कोई ग्रामीण ईसाई बन जाता है तो उसके मन को देश, राज्य और समाज की ओर से फेर देना सुगम होता है। गनवंत (अमरावती नं० ६) ने नियोगी कमेटी के सदस्यों को कहा, नव ईसाई अपनी वेष भूषा को बदलकर विदेशी ढंग अपना लेता है। डा० पिकेट ने भी इस सत्य को इस प्रकार स्वीकार किया है।

"विदेशी नाम, भेष भूषा और रहन सहन का ढंग अपना लेने से भारतीय जन उन लोगों से घृणा करने लग जाते हैं जो अपनी भारतीय परम्पराओं से चिपके होते हैं।

(Christian man movement in India P. 332 भारत में ईसाई मत का जन आन्दोलन पृ० ३३२)

ईसाईयों के राष्ट्र एवं संस्कृति विरोधी प्रचार का ज्वलन्त प्रमाण देना हो तो 'नागा प्रदेश की मांग और उसके लिये नागाओं द्वारा हिंसात्मक कार्यवाहियों का घृणित अवलम्बन प्रस्तुत किया जा सकता है। श्री के पी० मैनन जैसे अत्यन्त जिम्मेदार सरकारी प्रवक्ता ने इन उपद्रवों में ईसाई मिशन का अप्रत्यक्ष हाथका होना स्वीकार किया है। देखना है कि मध्यप्रदेश और केन्द्रीय शासन धर्म की ओट में होने वाली इस राजनैतिक चाल का अन्त करने के लिये क्या पग उठाते हैं ?

श्री युत एच० डब्लयू बीचनर ने ईसाई मत की प्रशन्सा करते हुए कहा था कि ईसाईयत काम करती है और ईसाई मत के विरोधी गाल बजाते है। वह भूखे का पेट भरती, नंगे का तन ढकती, बीमार की सुध लेती है और खोये हुये की खोज करती है। विरोधी लोग ईसाई मत को गाली देते और अनाप शनाप बकते हैं। लोग उसके कार्यों के फल से ही उसे ठीक ठीक जान पायेंगे।

निस्सन्देह ईसाई मिशन का जन-सेवा और शिक्षा प्रसार का काय अभिनन्दनीय रहा है परन्तु उसने गन्दी राजनीति को धर्म के साथ मिलाकर इन कार्यों के महत्व को खो सा दिया है। राजनीति के साथ ईसाई मत के गठ बन्धन से 'ईसा' 'कैसर' के रूप में और ईसाई मत अभिशाप के रूप में परिवर्तित कर दिये गये हैं। कम से कम भारत में तो ईसाइयत के कार्यों का यही फल दृष्टि गोचर होता है।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

संस्कृति का स्रोत और स्वरूप

[श्री डा० सूर्यदेव शर्मा, सिद्धान्त वाचस्पति एम०ए०एल०टी०, डी०लिट०, अजमेर]

"आर्यसमाज वर्तमान हिन्दू विचारधारा का अत्यन्त महत्वपूर्ण और मनोरजक अध्याय है।" (New India by Sir Henry Cotton)

"आर्य समाज शिक्षित हिन्दुओं के सम्मुख सुनिश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिनका मुख्य मूल स्रोत प्राचीन भारतीय ग्रन्थ (वेद) और परम्परायें हैं" (Sir Hervert Richley)

इन अवतरणों को यहां इसलिए उद्धृत किया गया है कि हमारे पाठक यह अनुमान कर सकें कि (१) हिन्दू विचार धारा तथा संस्कृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय तथा निखिलरूपेण सच्चा प्रतिनिधि आर्यसमाज ही है। (२) आर्य समाज जो सुनिश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत करता है उनका मूल स्रोत तथा मुख्य आधार प्राचीन ग्रन्थ वेद तथा प्राचीन भारतीय परम्परायें अर्थात् संस्कृति है। इनसे स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि हमारी वतमान संस्कृति का मूल स्रोत वेद और प्राचीन परम्परायें ही हैं। अतः हमें मानना चाहिये कि संस्कृति का मूल स्रोत निश्चित रूप से वेद ही है। "भूतं भव्यं भविष्य च सर्व' वेदात्प्रसिध्यति।"

इस प्रकार विदेशी विद्वान तो हमारी संस्कृति का मूल स्रोत वेद तथा भारतीय प्राचीन परम्परायें बतलाते हैं; परन्तु हमारे अपने विद्वान् क्या कहते हैं; सुनिये :—

श्री रामधारी सिंह दिनकर (ससत्सदस्य) जिन्होंने कि अभी हाल में "संस्कृति के चार अध्याय" नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जिसकी कि भूमिका हमारे प्रधान मंत्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है, अपने ता० १ सितम्बर के रेडियो पर "संस्कृति संगम" भाषण में कहते हैं, "भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत तक जाने की राह अभी तक नहीं खुली है, न इसकी कोई संभावना ही दीखती है कि वहां तक जाने का कोई सुस्पष्ट मार्ग कभी पाया भी जा सकेगा'''''" (नव भारत टाइम्स २ सितम्बर १९५६)।

इन्होंने तो भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत तक पहुंचना तो अलग रहा, वहां तक पहुँचने की सम्भावना का द्वार भी बन्द कर दिया। जब मूल स्रोत का पता ही नहीं तब तो अनुमान के आधार पर विविध कल्पनायें ही की जा सकती हैं। अतः आगे कहा गया कि उन्नीसवीं शताब्दी में आर्य समाज, ब्रह्मसमाज आदि आन्दोलन उठे जिन्होंने वेद और उपनिषदों की प्राचीनता और प्रामाणिकता पर बल दिया जिसका फल यह हुआ कि "लोग यह मानने लगे कि हिन्दुत्व की रचना उन लोगों ने की जिन्होंने वेद रचे थे किन्तु अर्वाचीन अनुसंधानों से जो तथ्य सामने आये हैं उनके बल पर अब यह अनुमान प्रबलता प्राप्त कर रहा है कि हिन्दुत्व की सारी बातें आर्यों की लाई हुई नहीं हैं'''' जब आर्य और द्राविड़ (जो इस देश में आर्यों के आने से पहले ही विद्यमान थे) मिलकर एक समाज के अंग बन गये तब उनके आचार, विचार, आदतें और रिवाज भी परस्पर मिश्रित होने लगे और इस मिश्रण से जो धर्म निकला वही भारत का सनातन धर्म एवं जो संस्कृति निकली वही भारत की बुनियादी संस्कृति हुई।" इस प्रकार "भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की रचना नहीं है। उसमें भारत में

आकर यहां बस जाने वाली अनेक जातियों के अंशदान हैं।"

पाठकों ने देख लिया यह है भारतीय संस्कृति का निर्माण का रूप जिसके आदि स्रोत का तो पता ही नहीं। इस प्रकार जो हमारे ऋषियों ने कहा कि "वेद प्रतिपादितो धर्मः" 'सर्वं वेदात् प्रसिध्यति' 'वेदो हि धर्ममूलं स्यात्' वह तो सब निराधार है? चाहिये तो यह था कि जैसे गंगा किनारे २ ऊपर का चलते हुये हम उसके मूल स्रोत गंगोत्री तक पहुंच जाते हैं जहां से शुद्ध निर्मल भागीरथी की पावन जलधारा प्रवाहित होती है, उसी प्रकार हम मानते कि "यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः" वेद की कल्याणी वाणी गंगोत्री के समान हमारी संस्कृति रूपी भागीरथी का मूल उत्स है और वहां से जो निमल ज्ञान की विमल धारा प्रवाहित हुई है वही हमारी वास्तविक संस्कृति है, उसमें अन्य देशों की छोटी मोटी विचार-धारायें समय-समय पर बाहर से आकर उसी प्रकार मिलती रहीं जैसे कि गंगा की पावन धारा में बहुत से बरसाती नदी नाले आकर मिलते रहते हैं। फिर भी गंगा का मूल स्रोत तो वही रहता है निर्मल, शुद्ध, पवित्र; वैसे ही हमारी संस्कृति तथा धर्म का मूलस्रोत तो परम पावन वेद है, न कि द्राविड़, यूनानी, मंगोल, शक, कुशान, आभीर, हूण आदि जातियों का योगदान, जैसा कि श्री दिनकर जी ने लिखा है :—

"यह नहीं कहा सकता कि भारतीय संस्कृति केवल आर्यों और द्राविड़ों की रचना है ... किन्तु (उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त) आज की बनवासी जातियों के पूर्वज औष्ट्रिक या आग्नेय जाति के लोगों से भी भारतीय संस्कृति को अनेक उपकरण प्राप्त हुये हैं।" इस प्रकार हमारी संस्कृति का मूलस्रोत सिद्ध होना तो अलग रहा, वनवासी (जंगली) जातियों के पूर्वजों से भी हमने अपनी संस्कृति के तत्व ग्रहण किये हैं। इस प्रकार हमारी सभ्यता कम से कम अंश रूप से तो "जंगली सभ्यता" हुई न? पाश्चात्य लेखक तो भारत को बदनाम करने के लिये हमारी सभ्यता को जंगली कहते ही थे, अब हमारे विद्वान् भी यही सिद्ध करने में लगे हुये हैं। "किमाश्चर्यमतः परम्?"

फिर संस्कृति का स्रोत ही नहीं, स्वरूप भी नितान्त विकृत रूप में हमारे ही विद्वानों द्वारा संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। श्री के० एम० मुंशी जैसे माननीय विद्वान् अपने "लोपामुद्रा" नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखते हैं कि "प्राचीन आर्यों में मांस भी खाया जाता था और गाय का मांस भी। दिवोदास राजा अपने अतिथियों को गो मांस खिलाकर ही "अतिथिग्व" कहलाता था ... आर्यों में कुमारी से उत्पन्न बच्चे पतित नहीं समझे जाते थे। आर्य लोग भेड़ियों की तरह लोभी थे ... वे जुआ खेलते और सुरापान करते थे ..." इत्यादि अनेक आक्षेप प्राचीन आर्यों की सभ्यता और संस्कृति पर किये गये हैं। यही नहीं; भारतीय विद्या भवन बम्बई से प्रकाशित "वैदिकयुग" नामक ग्रन्थ में (जिसकी भूमिका श्री के० एम० मुंशी ने लिखी है) आर्यों को गो मांस भक्षी सिद्ध किया गया है, राम को ईसा के जन्म से २३५०वर्ष पूर्व का और कृष्ण को केवल १७०० वर्ष पूर्व का माना गया है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि आर्यों की बरातों में गो मांस की दावत दी जाती थी ... इत्यादि।

भला जिस यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही गाय के लिये "अघ्न्या" शब्द का प्रयोग किया गया हो, अथर्ववेद ८. १०१, १५। में गाय को 'माता रुद्राणां दुहिता वसूनां ... मा गामनागमदितिं वधिष्ठ" कहा गया हो, उस वेद को मानने वाले आर्य लोग अपनी माता स्वरूपा गाय का मांस खायें और उसे दावतों में परोसें,यह बात किसी की कल्पना में भी

आर्य समाज और गीता

[लेखक—श्री प० राजेन्द्र जी अतरौली अलीगढ़)]

गीता के सम्बन्ध में आर्य विद्वानों में भारी मत-भेद है। कोई विद्वान किन्हीं स्थलों को प्रक्षिप्त और कोई किन्हीं को मानते हैं। कभी २ गीता की कथा आर्य समाज की वेदी से, कोई २ विद्वान कहते देखे जाते हैं। और कहीं २ प्रक्षिप्त स्थलों में विवाद भी उठ खड़े होते हैं। ऋषि दयानन्द गीता में अनेक प्रक्षिप्त भाग मानते थे, ऐसा उनके जीवन-वृत्तात के अनेक स्थलों से स्पष्ट होता है।

स्वर्गीय पं० आर्य-मुनि ने अपने गीता भाष्य में केवल एक श्लोक अध्याय ११।४६, को प्रक्षिप्त माना है। शेष सब की किसी न किसी प्रकार संगति लगाने का प्रयत्न किया है। प० भीम सेन शर्मा ने, जब वह आर्य समाजी थे, गीता के अनेक श्लोकों तथा अध्यायों को अपने भाष्य में युक्ति युक्त ढंग से प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। कर्णवास निवासी पं०भूमित्र शर्मा ने भी जिनका उपनयन-संस्कार स्वयं ऋषि दयानन्द ने कराया था, एक छोटा सा गीता भाष्य प्रकाशित किया है। उन्होंने इस भाष्य की प्रस्तावना में ऋषि दयानन्द के मतानुसार ८।६।१०।११।१२ अध्यायों को समग्र प्रक्षिप्त लिखा है और अन्य अध्यायों में भी बहुत से श्लोकों को प्रक्षिप्त बताया है। एक अन्य भाष्य स्वामी दर्शनानन्द जी का भी मिलता है, जिसमें उन्होंने एक भी श्लोक प्रक्षिप्त नहीं माना। गत वर्षों में श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने, जो आर्य समाज के एक माने हुए विद्वान हैं, गीता पर एक गवेषणा पूर्ण भाष्य प्रकाशित किया है

आना सभव है क्या? और फिर नितान्त असम्बद्ध, इतिहास विरुद्ध बातें देखिये—वेद तो ईसा से १५०० या २००० वर्ष पूर्व लिखे गये और कृष्ण ईसा से १५०० वर्ष पूर्व और राम २२५० वर्ष पूर्व हो चुके अर्थात् राम और कृष्ण की उत्पत्ति के सैकड़ों वर्ष पूर्व वेदों की रचना हुई? राम और कृष्ण के समय वेद थे ही नहीं, फिर वाल्मीकि रामायण में राम के समय में वेदों का पठन पाठन का वर्णन सब कपोल कल्पना ही ठहरी? बलिहारी है ऐसी तर्क की? [इस विषय की विस्तृत विवेचना किसी आगामी लेख में की जायगी]

इस प्रकार हमारी संस्कृति के मूलस्रोत, उसके संगम, स्वरूप और प्रवाह तथा "सामासिकता" पर अनेक भ्रान्त धारणायें प्रचलित हैं तथा प्रचारित की जा रही हैं जो प्रायः पाश्चात्य विचार सरणि का अनुकरण मात्र प्रतीत होती हैं। हमारे भारतीय विद्वानों को तो पाश्चात्य अशुद्ध विचार धारा के उत्तर में भारतीय संस्कृति और वैदिक सभ्यता के संरक्षण तथा प्रचार के लिये सदा कटिबद्ध रहना चाहिये ऐसी प्रार्थना है। साथ ही आर्य सार्वदेशिक सभा से हम यह निवेदन करते हैं कि वह अपने अन्तर्गत एक वृहत् अनुसंधान विभाग खोल कर उसमें आर्य समाज के कम से कम पांच उच्च कोटि के विद्वानों को बिठाये जो ऐसे भ्रान्त विचारों के निराकरण पर सुन्दर सप्रमाण ग्रन्थ तैयार करें जिससे हमारे धर्म, साहित्य और संस्कृति की रक्षा हो सके और हम सगर्व और सहर्ष कह सकें:—

"वेद ही संस्कृति तथा सद्धर्म का शुभ स्रोत है।
अखिल भारत-सभ्यता में वेद ओत-प्रोत है॥

नोट— सार्वदेशिक सभा ने अनुसंधान विभाग खोल दिया है। —सम्पादक

जिसमें अनेक प्रक्षिप्त अध्याय और श्लोक निकाल दिए गए हैं। स्वामी जी महाराज ने इन प्रक्षिप्त भागों की सिद्धि में अनेक प्रबल युक्तियां दी हैं।

वैदिक सम्पत्ति के सुप्रख्यात लेखक पं० रघुनन्दन शर्मा का भी यही मत है कि गीता में बहुत कुछ पीछे से मिलाया गया है। गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक अध्याय है। महाभारत में अपने वास्तविक आकार से कई गुना सम्मिश्रण हुआ है, ऐसा सभी निष्पक्ष विद्वानों का सर्व सम्मत मत है। गीता को—जो उसका केवल एक अध्याय मात्र है, और जिसका श्री शंकराचार्य के भाष्य से पूर्व कोई पृथक अस्तित्व नहीं माना जाता, और न उसका कहीं तत्कालीन बौद्ध-साहित्य में कोई उल्लेख बताया जाता है—ऐसी अवस्था में यह कौन कह सकता है कि उसमें कोई संमिश्रण नहीं हुआ है? शंकर स्वामी से पूर्व इसकी कोई अन्य टीका भी उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः यही कारण है कि आज के बहुत से इतिहासज्ञ उसका रचना काल ईसा की पांचवीं, छटी शती मानते हैं। उनका तो यहां तक कहना है कि समस्त गीता इसी काल में लिखी गई और उसे महाभारत में मिला दिया गया।

गीता अध्याय २ के श्लोक ४१।४२।४३।४४।४५ ४६ तथा ५३ में वेदों की निन्दा की गई है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। किन्तु श्लोक ४५ का वेद विरोधी होना निर्विवाद है। इस श्लोक में वेदों को त्रैगुण्य-विषयाः अर्थात तीनों गुण वाले कार्य रूप संसार को ही प्रकाशित करने वाला स्पष्ट रूप में कहा गया है और अर्जुन को उससे ऊपर उठने का उपदेश दिया गया है। तब क्या वेदों का त्रिगुण-प्रकृति ही विषय है, ब्रह्म-विद्या नहीं जब कि वेदों में ब्रह्म-विद्या का अपार भंडार है।

आर्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण मानता है। और उनकी रक्षा का भार उसके कंधों पर है। ऋषि दयानन्द ने गीता की आर्ष ग्रन्थों में कहीं भी गणना नहीं की है, फिर जिस ग्रन्थ में वेदों की निन्दा हो, उसके सम्बन्ध में आर्य-विद्वानों की अनिश्चित नीति आर्यसमाज के लिए एक गम्भीर विचारणीय विषय है।

गीता का समग्र उपदेश द्वितीय अध्याय को छोड़ कर समय और परिस्थिति के अनुकूल है भी नहीं। इस दूसरे अध्याय में भी, जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है वेदों के निन्दा सूचक कई श्लोक हैं। गीता का शांकरमत के प्रस्थान त्रयी (गीता उपनिषद, वेदान्त-दर्शन) में विशेष स्थान है। 'ब्रह्म सत्यं'—जगत् मिथ्या के मानने वालों के लिए वेद के प्रति जो धम,अर्थ काम,मोक्ष अर्थात् अभ्युदय एवं निश्रेयस की प्राप्ति पर समान बल देते हैं, अश्रद्धा अस्वाभाविक नहीं है। शंकराचार्य ने अपने गीता भाष्य में श्रुति के नाम से जितने भी प्रमाण दिए हैं वे सब ही उपनिषदों के हैं—वेदों के नहीं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि उन्हें वेदों की प्रतिष्ठा अभीष्ट नहीं थी। ऐसी अवस्था में यदि गीता में वेदों की निन्दा है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

गीता को उपनिषद् रूपी गौओं का दोहन करके साररूप निकाला हुआ दुग्ध कहा जाता है। तब गौ को छोड़ कर सार को जिसमें बहुत से आवश्यक तत्वों के नष्ट होने की आशंका के साथ ही मिलावट का भी भय हो—हम क्यों ग्रहण करें? वेद रूपी गौ की रक्षा, जिससे स्वच्छ और शुद्ध दुग्ध प्राप्त होता है, रक्षा क्यों न की जाय? गौ रक्षा से ही दुग्ध की रक्षा हो सकती है। अतएव सार्वदेशिक धर्मार्य सभा को इस विषय पर अपना निश्चित मत प्रकाशित करना चाहिए—ऐसा मेरा मत है।

❀

सिद्धान्त - विमर्श

आयु नियत है—एक नवीन गवेषणा

[श्री विश्वनाथ जी आर्योपदेशक]

योग दर्शन का प्रसिद्ध सूत्र "सतिमूले तद्विपा को जात्यायुर्भोगः" मूल के रहते हुए उसका फल जाति आयु और भोग है। इस पर विचार करना है जैन और बौद्ध भी पुनर्जन्मको मानते हैं। परन्तु फलदाता ईश्वर को न मान कर मद्य की मादकता की भान्ति स्वयं कर्म को ही फलदाता कहते हैं परन्तु मादकता तो संयोग जनित फल है और पुनजन्म न्याय जनित। कोई चोर स्वयं कारागार में नहीं चला जाता। अतः उपनिषद में कहा है "संयोग हेतु रपरोऽपि दृष्टः" जीवात्मा को परमात्मा ही दूसरे जन्म से संयुक्त करता है।

ऊपर के योग सूत्र के अनुसार दूसरे जन्म में प्रभु जाति आयु और भोग के रूप में फल प्रदान करता है। इनमें आयु के सम्बन्ध में आर्य विद्वानों में बड़ा भेद पाया जाता है। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के विचार अनुसार आयु श्वासों की विशेष संख्या पर नियत होती है। ब्रह्मचर्य योगाभ्यास प्राणायाम आदि से श्वास धीरे-धीरे आने से श्वासों की नियत संख्या में समय अधिक लगने से दिन आदि में तो आयु बढ़ जाती है श्वासों में नहीं। दुराचार से श्वास शीघ्र २ आने पर आयु दिनों में कम भी हो सकती है। जब कोई किसी को कृपाण आदि द्वारा मार देता है, तो यदिच्छा से कृपाण मारने और उसकी श्वासों में आयु समाप्त होने का एक ही समय होता है।

इस पर पहला आक्षेप यह होता है कि सब शास्त्रों और सब देशों में काल की गणना नियमित गति वाले पदार्थों दिन वर्ष और इसके मध्य घटिका यन्त्रादि से होती है, अनियमित श्वासों से नहीं। वेद में "जीवेम शरदः शतम्" हम सौ वर्ष तक जीवें "शतंवर्षाणि जीवति" सदाचारी सो वर्ष तक जीता है। मनु श्वासों की गणना से आयु का वेद शास्त्रादि में कोई प्रमाण नहीं।

दूसरा आक्षेप—यदि घड़ी पल दिनादि में आयु घट बढ़ गई तो वह वस्तुतः नियत न रही। यदि नियत मानें तो यह ऐसा धोका होगा, जैसा कि एक गुरु ने अपने एक शिष्य को एक और दूसरे को दो मोदक दिये। पहले के अन्याय जतलाने पर उसने दो का एक मोदक बना कर कहा देखो इसे भी तो एक ही दिया।

तीसरा आक्षेप--घातक ने आयु की समाप्ति पर ही कृपाण चलाई तो क्या यह ईश्वरीय प्रेरणा से ऐसा हुआ? तब तो वह जल्लाद की भान्ति लोक और परलोक दोनों में ही दण्ड का भागी न होगा। यदि नहीं तो ऐसे घात प्रति दिन होते हैं, अतः यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक घात आयु की समाप्ति पर ही हो और प्रायः ऐसी अवस्थाओं में आयु की समाप्ति का कोई दूसरा निमित्त दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः यह वृथा कल्पना मात्र ही है।

चौथा आक्षेप--संसार में प्रायः सब मौतें अपने दोष,किसी दूसरे के आघात, अथवा अदृश्य रूप में रोगाणुओंके प्रवेश से दृष्टिगोचर नहीं होती

अतः यह कहना नितान्त भ्रान्ति है, कि श्वासों के पूरा हो जाने से मृत्यु होती है।

पांचवां आक्षेप-इस प्रकार आयु नियत मानने से क्रियात्मक रूप में मानव पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यह कोई बल और साहस का काम नहीं कर सकता कि शीघ्र २ श्वास आयेंगे। रोगादि का उपाय भी न करेगा कि नियत आयु से पहले मैं मर नहीं सकता।

द्वितीय विचार—इसके विरुद्ध प्रायः अधिक आर्य विद्वान् ऐसा मानते हैं, कि घड़ी की गारंटी की भान्ति नियत आयु का अर्थ मानव की प्राकृतिक स्वाभाविक आयु है, और भोग की भान्ति शुभ कर्मों से बढ़ाया और अशुभ कर्मों से इसे घटाया भी जा सकता है। अन्य जीवों के आघात से यह शीघ्र भी नष्ट हो सकती है।

इस पर पहला आक्षेप यह होगा, कि विज्ञान के अनुभव अनुसार प्रत्येक प्राणी की प्राकृतिक आयु युवावस्था की आयु से पांच गुणा होती है, तदनुसार मानव को स्वाभाविक आयु २५×५= १२५ वर्ष होती है इस प्रकार स्वाभाविक आयु जाति शब्द के भीतर ही आ जाती है तो महर्षि पतञ्जलि ने इसका पृथक् वर्णन क्यों किया?

दूसरा आक्षेप—जीवों के कर्मों की विविधता से उसका फल आयुरूप में भी विविध होना चाहिये अतः स्वाभाविक आयु जो सब जाति की एक होती है कैसे हो सकती है ? अतः नियत आयु स्वाभाविक आयु नहीं।

तीसरा आक्षेप—बाधक अवस्था में कोई वस्तु नियत नहीं रह सकती। समग्र वस्तु प्राप्त हो जाने पर पुरुषार्थ से उसमें वृद्धि आलस्य आदि से उसी की क्षति होगी। भोग सामग्री के लिए तो ऐसा कह सकते हैं जाति और आयु के लिये नहीं। यद्यपि व्यास भाष्य में "विश्वा मित्रादीनां तपः प्रभावात् जात्यायुषी" कहा गया है परन्तु जाति का अर्थ यहां पर वर्ण लिया गया है, प्रसवात्मक जाति में तो परिवर्तन नहीं हो सकता ऐसे ही नियतायु में भी।

नियत आयु का ठीक अर्थ सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने सिद्ध किया है कि ईश्वर त्रिकालाबाधित है। त्रिकाल जीव के लिये है और जीवों की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, अतः वह भविष्य का भी ज्ञाता है। जीव को कर्मों का फल भावि जन्म द्वारा ही दियाजाता है। दूसरे शब्दों में दूसरे जीवों के कर्मों के फल में सांझी बनाया जाता है। पिता परिश्रम वा प्रारब्ध से धन प्राप्त करता है, परन्तु पुत्ररूप में दूसरा जीव उसके भोग में सांझी बन जाता है। अतः जीव के कर्मों का फल ईश्वर और उसकी सर्वज्ञता (त्रिकालज्ञता) के बिना सम्भव नहीं।

आर्य समाज के बहुत से विद्वान् ईश्वर को असम्भव दोष से भविष्य का ज्ञाता नहीं मानते। इस असम्भवता पर तो फिर कभी विचार किया जावेगा, परन्तु ऐसा मानने से वह कर्मफल प्रदान में असमर्थ होगा। उदाहरण के लिये किसी जीव को धन के भोग के लिये एक लखपति के घर उत्पन्न किया। एक मास पीछे किसी कारण उसका सब धन नष्ट हो गया तो वह जीव एक निर्धन का पुत्र बन दुःख भोगने लगा। ईश्वर भविष्यज्ञ न होने से इसे नहीं जानता था अतः जीव को प्रतिकूल फल मिल गया। यदि वह भविष्यज्ञ है तो हम कहेंगे कि वहां ऐसे जीव को भेजा जिसके कर्मों का फल पहले धन का सुख पीछे निर्धनता का दुःख होना चाहिये। ऐसे ही ईश्वर जानता है कि इस जीवने परिस्थिति अनुसार कब मरना है, वही उसकी नियत आयु है।

महर्षि दयानन्द और आर्य समाज
(अन्यों की दृष्टि में)

(गताङ्क से आगे)

यह खेद की बात है कि महर्षि दयानन्द ने वेद के प्रामाण्य पर बल देते हुए उपनिषदों के महत्त्व पर पर्याप्त बल नहीं दिया जिनमें वेद संहिताओं की विशद व्याख्या विद्यमान् है और उन्होंने गीता जैसे धर्म शास्त्र की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जो उपनिषदों का सार है ? इसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे विष्णु पुराण और भागवत में चित्रित कृष्ण के पौराणिक चित्र से बहुत खिन्न थे। यदि वे गीता को अपनी शिक्षाओं में सम्मिलित करके उसके कर्म सिद्धान्त की ठीक व्याख्या करते जो उनकी प्रवृत्ति और दृष्टिकोण के अनुकूल था तो उनके हाथ हजारों गुना दृढ़ हो गये होते। हिन्दू धर्म को सुनिश्चित रूप देने मे उनके संदेशों में शक्ति का संचार हुआ और हिंदू धर्म को पवित्र करके समस्त हिंदुओं को एक झंडे के नीचे लाकर विदेशी मतों के आक्रमण से उसकी रक्षा करने का उनका तात्कालिक उद्देश्य भी पूरा हुआ। इसमें संदेह नहीं है कि दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्य समाज हिंदू धर्म के वक्षस्थल पर सैनिक चर्चा है और यदि कोई देश भक्त हिंदू उनके कार्य के महत्त्व को कम करके दिखाना चाहे तो उसके लिये यह शोभा की बात न होगी। हिंदू समाज की भयंकरतम त्रुटियों के मूल पर प्रहार करके और उसके समस्त वर्गों को एक साथ बोलने में समर्थ बना के आज आर्य समाज तीन अत्यन्त महत्त्व के आन्दोलनों को हाथ में लिए हुए है—शुद्धि, संगठन और शिक्षा प्रणाली।

शुद्धि उस दीक्षा-संस्कार का नाम है जिसके द्वारा अहिंदू जन हिंदूधर्ममें प्रविष्ट किये जाते हैं। इस साधन से आर्य समाज न केवल दलित वर्ग और अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयों को यज्ञोपवीत देकर उन्हें अन्य हिन्दुओं के समक्ष ही नहीं बनाता अपितु उन हिन्दुओं को भी जो मुसलमान और ईसाई बन गए हैं या बन जाते हैं, शुद्ध करके हिन्दु समाज में ले आता है। इतिहास साक्षी है कि हिन्दु धर्म ने अपने शक्ति काल में विदेशीय जातियों और राष्ट्रों के सहस्रों पुरुषों को अपनेमे घुला मिलाकर उनमें से कुछेक को उच्च सामाजिक स्थिति प्रदान की। विस्तार के वर्तमान युग में आर्य समाज शुद्धि को अपने कार्यक्रम का अंग बनाकर प्राचीन कालीन महान् हिन्दू नेताओं और राजनीतिज्ञों के पद चिन्हों पर चल रहा है।

आर्यसमाज के कार्यक्रम में हिन्दु संगठन का अभिप्राय है आत्म-रक्षा के लिए हिन्दुओं का संगठन। अन्य मतों के उपदेशकों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये गए आक्षेप और आक्रमण को, किसी भी हिन्दू को सहन न करना चाहिए। इतना ही नहीं, हिन्दुओं को अपने में वीर भाव धारण करके शत्रु के गढ़ में जाकर उसके आक्रमण का सामना करना चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने ईसाई और मुसलमानी

The Hindui-m through the Ages नामक पुस्तक पर आधारित—लेखमाला

मत को ठीक उतनी ही उग्र आलोचना की है जितनी पौराणिक मत की। कुछ लोगों को इस आलोचना की भाषा पर दुःख हो सकता है परन्तु स्वामी दयानन्द 'जैसे को तैसा' के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। ✻महर्षि के उदाहरण का अनुसरण करते हुए आर्य समाज इस्लाम और ईसाई मत के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करता और अपने बिछुड़े हुए भाइयों को पुनः हिन्दू धर्म में लाने का यत्न करता है। आर्य समाज हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को रक्षा में अपने सदस्यों के जीवन का बलिदान करने के लिये भी तत्पर रहता है। आर्य समाज की इस विरोचित भावना ने हिन्दू समाज में आत्म सम्मान और वीरता की भावना भरी है जो मुख्यतः मुस्लिम शासन में नष्ट हो गई थी।

स्वामी दयानन्द ने अपने तूफानी जीवन में राष्ट्रीय शिक्षा पर निरन्तर बल दिया। वे जहां २ गए उन्होंने संस्कृत की पाठशालाओं की स्थापना की। वेदों की शिक्षा का प्रसार करने की प्रेरणा की। आर्य समाज के आठवें नियम में—विद्या के प्रसार और अविद्या के विनाश का आर्य का आवश्यक कर्त्तव्य ठहराया गया है। इस नियम के अनुसार आर्य समाज शिक्षा प्रसार और धर्म प्रचार के कार्य में व्यस्त है।

आर्य समाज की शैक्षणिक प्रगतियों की दो महान यादगार स्थित हैं लाहौर का प्रसिद्ध ऐंग्लो वैदिक कालेज जो कभी बहुत प्रसिद्ध रह चुका है और गुरुकुल कांगड़ी। पहले के साथ लाला हंसराजजी का और दूसरे के साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम जुड़ा है। ये दोनों महानुभाव क्रमशः आर्य समाज की कालेज और गुरुकुल पार्टियों के प्रमुख थे।

यद्यपि कभी २ दोनों दलों में शाब्दिक युद्ध छिड़ जाता था तथापि दोनों में पारस्परिक सद्भाव था और साधारणतः प्रत्येक शान्ति पूर्वक अपने आदर्श पर चलकर अपने कार्यक्रम को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील रहता था। आर्यसमाज पर जब २ बाह्य आपत्ति आती थी तो दोनों दल उसका निराकरण करने के लिए आपस में मिल जाते थे। उदाहरणार्थ १८९७ में जब एक मुसलमान ने पं० लेखराम जी का वध किया। १९०३ में ईसाई मिशनरियों ने अपने सहायता कार्य को लोगों को ईसाई बनाने के लिए प्रयुक्त किया, जब काशमीर में लाला रामचन्द्र के वध से दलितोद्धार के कार्य को धक्का लगने की आशंका उत्पन्न हुई, जब १९२२-२३ में मालावार में २० ० से अधिक हिन्दू परिवारों को बलात् मुसल्मान बनाया गया जब राजपूताने और उत्तर प्रदेश के ३० हजार से अधिक मलकाना मुस्लिम राजपूतों को हिन्दू धर्म में दीक्षित किया गया तब दोनों दलों ने मिलकर काम किया और अद्भुत सफलता प्राप्त की। इसके फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हुआ जब कि एक मजहबी मुसल्मान पागल ने १९२६ में जब स्वामी जी रोग शय्या पर पड़े थे उनसे भेंट की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गोली से मारा।

स्वामी जी महाराज की हत्या उन आक्रमणों की ओर बाधाओं की शृंखला का अत्यन्त स्थूल रूप था जो आर्यसमाज की धार्मिक प्रगतियों के मार्ग में उपस्थित की जाती थीं। (क्रमशः)

+ गीता को आश्रय न देने का कारण जानने के लिये पाठकगण श्रीयुत पं० राजेन्द्र जी के लेख को पढ़ें जो अन्यत्र दिया गया है — संपादक

२. उपनिषद के निर्भ्रान्त होने से वेद का स्थान नहीं ले सकते। अवश्य वेद के अर्थ को समझने के लिए जिन शास्त्रों की सहायता ली जानी आवश्यक है उनमें तो उपनिषदों को भी स्थान दिया गया है।

एक शंका का समाधान

[लेखक—श्रीयुत आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री]

मुझे सार्वदेशिक सभा कार्यालय से श्री पं० रघुनाथप्रसाद जी पाठक का एक पत्र मिला। उसमें यह लिखा था कि सार्वदेशिक के "स्वाध्याय का पृष्ठ" शीषकमें अगस्त १९५६ वाले अङ्कमें मेरी "कर्ममीमांसा" पुस्तक से "क्या विहार का भूकम्प और पाकिस्तान का रक्तपात लोगों के कर्मों का फल था ?" यह अवतरण छापा गया था। उसपर आर्यसमाज आबू रोड ने एक शंका उपस्थित की है और श्री पाठक जी ने चाहा है कि मैं उसका उत्तर दूँ तो अच्छा हो। अतः मैं नीचे की पंक्तियों में समाधान का प्रयत्न करता हूं।

मुझे जहां तक मालूम हुआ है शंका निम्न प्रकार से की गई है—कर्म फल के आधार पर आर्य समाज के सिद्धान्त के यह विरुद्ध है, क्योंकि जब आर्यसमाज पूर्वजन्मों के कर्मफल को मानता है तो भूकम्प आदि घटनायें कर्म फल क्यों नहीं ? समाधान—जहां तक शंका का समाधान से साधारणतया सम्बन्ध है इसके उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त था कि पूर्वोक्त उदाहरण मेरी पुस्तक कर्ममीमांसा के भाग्य और पुरुषार्थ प्रकरण से दिया गया है। उस पुस्तक से उस पूरे प्रकरण को यदि पढ़ लिया जावे और साथ ही इसके पूर्व वाले "कर्म विपाक" प्रकरण को पढ़ लिया जावे तो शंका का समाधान स्वयं हो जावेगा। लेकिन यहां ऐसा सीधा उत्तर न देकर मैं विशेष कुछ कहने की इच्छा कर रहा हूँ। वस्तुतः शंका के शब्दों पर विचार किया जावे तो पता चलता है कि उसमें भी कोई संगति नहीं परन्तु आर्यसमाज को अपने सिद्धान्तों के प्रति इतनी जागरूकता है यह बहुत ही प्रशंसनीय बात है और इसी लिए मैं कुछ लिखने को प्रेरित हो रहा हूं। मैं अपनी दृष्टि से शंका को तीन भागों में विभक्त पाता हूं। प्रथम भाग तो यह बतलाता है कि मेरी पुस्तक का पूर्वोक्त उद्धरण शंकाकर्त्ता की दृष्टि में "कर्म फल के आधार पर विरुद्ध है। दूसरा भाग यह प्रकट करता है कि पूर्वोक्त उद्धरण आर्य समाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है। तीसरा भाग यह बतलाता है कि क्योंकि जब आर्य समाज पूर्वजन्मों के कर्म फल को मानता है तो भूकम्प आदि घटनाएं कर्म फल क्यों नहीं ?

पहले भाग को लेकर शंका का समाधान करने में मैं यहां यह कहना चाहूंगा कि मेरी पुस्तक का पूर्वोक्त उद्धरण कर्म फल के आधार पर लिखा गया है। वह किसी भी प्रकार उसके विरुद्ध नहीं है। कर्म फल का सिद्धान्त दार्शनिक चर्चा का विषय है। दर्शन और अन्य एतद्विषयक ग्रन्थों के आधार पर जो कर्म फल का सिद्धान्त आधारित है उसके यह विरुद्ध नहीं। कर्म फल का मूल सिद्धान्त यह है कि मानव को अपने किये हुये भले-बुरे कर्मों क फल मिलता है। भले का फल भला और बुरे का फल बुरा। परन्तु यह फल परमात्मा की व्यवस्था में मिलता है स्वयं नहीं। अच्छे कर्मों क फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है यह नियम अटूट, अटल और सत्य है परन्तु प्रत्येक फल और उसके कर्म की तफसील मानव बुद्धि की सीमा से परे है। तफसील पूर्णतया नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह अत्यन्त गूढ़ विषय है। कर्म का फल तीन प्रकार का होता है और वह जाति, आयु, तथा भोग है। परन्तु एक प्रश्न यह खड़ा होगा कि मनुष्य एक

घण्टे में ही पता नहीं कितने पुण्य और पाप कर्म कर डालता है तो जीवन भर का सारा पुण्य और पाप कर्म तो ढेर का ढेर बन जावेगा। जिसको हम सत्य कहते हैं वही करते समय पता नहीं कितने प्रकार से किया जा सकता और किया जाता है। जिसको हम असत्य कहते हैं वह भी अनेक प्रकार का हो जाता है। यह केवल सत्य और असत्य की बात है। अन्य पुण्य और पाप कर्मों को देखा जावे तो अनगिनत कर्म बन जावेंगे और वह भी मानव के पूरे जीवन के। परन्तु साधारण दृष्टि से यदि यही तर्क यहां लगा दिया जावे कि प्रत्येक अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे का बुरा फल होता है; किया हुआ प्रत्येक कर्म भोगना ही पड़ता है। तो क्या समस्या का पूरा समाधान हो जावेगा? मेरा विचार है कि नहीं हो सकेगा। इसीलिए कर्मफल पर विचार करते हुये दर्शनकार ऋषियों ने विशेष मार्ग का अवलम्बन लिया है। यदि प्रत्येक कर्म का फल माना जावे तो प्रश्न यह उठेगा कि एक कर्म एक फल देता है, अथवा एक ही कर्म अनेक फल देता है? यह फल एक साथ ही होते हैं या क्रम से होते हैं? प्रत्येक कर्म का फल क्रमशः है अथवा कई कर्म मिलकर भी एक फल देते हैं। यदि एक कर्म एक फल देवे तो जीवन में जितने कर्म किये गये हैं उन्हीं का फल पूरा पूरा नहीं भोगा जा सकेगा। यदि एक कर्म के ही अनेक फल हों तो फिर बाकी किये गये कर्मों के फल भोग का कभी अवसर ही नहीं आवेगा। प्रत्येक कर्म क्रमशः जाति, आयु और भोग रूप फल देवे तो फिर अनेक कर्मों का फल संभव कैसे हो सकेगा और यदि एक साथ फल दें तो एक समय में अनेक जन्म आदि संभव नहीं।

यदि कई कर्म मिलकर एक फल पैदा करते हैं तो यह गलत होगा कि प्रत्येक कर्म का फल अलग अलग मिलता है। इन कठिनाइयों का विचार करके दर्शनकारों, ने यह सिद्धान्त निकाला कि "जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त किये गये भले बुरे कर्मों का संस्कार समूह चित्र-विचित्ररूप में हुआ प्रधान और गौणरूप से मरण से अभिव्यक्त होकर परस्पर मिला हुआ मृत्यु को सिद्ध करके एक जन्म को पैदा करता है और वह जन्म उसी के अनुसार आयुवाला होता है और उस आयु में उसी कर्म के अनुसार भोग प्राप्त होते हैं। यह कर्माशय जन्म, आयु और फल वाला होनेसे त्रिविपाक कहा गया है। अतः कर्ममात्र फल नहीं देते बल्कि कर्मसंस्कार समूह अथवा कर्माशय या कहना चाहिये कि कर्म पक कर कर्माशय रूप में आकर फल देते हैं। इसीलिए कर्म के फल को कर्मविपाक कहा गया है। यह मेरी कल्पना नहीं है इसको योगदर्शन के द्वितीय पाद के १२ वें सूत्र के व्यास भाष्य में इसी प्रकार देखा जा सकता है। इसी लिए योगदर्शनकार ने "कर्म को सीधा फल पैदा करने वाला न कहकर "कर्माशय" को फल देने वाला कहा है। वे कहते हैं - क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः; तथा-सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः योग० २।१२-१३ अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों के मूल वाला कर्माशय इस जन्म और अगले जन्म में अथवा दोनों जन्मों में भोगा जाने वाला है। अविद्या रूपी मूल के बने रहने पर ही कर्माशय का फल जाति, आयु और भोग रूप में होता है। अन्य दर्शनों में दृष्ट अदृष्ट अथवा सद्यः और कालान्तर में होने वाले फल के भेद के साथ कर्मफल का विवेचन किया गया है। परन्तु भाव सबका एक ही है। दार्शनिक दृष्टि से "कर्मफल" शब्द का अर्थ "कर्माशय का विपाक" हुआ। अतः "कर्म का फल होता है" साधारण लोगों के इस कथन का दार्शनिक दृष्टि से—कर्माशय का ल होता है—यह अर्थ निकला। दूसरी बात यहां ध्यान देने की यह है कि दर्शनकार यहां स्पष्ट कह रहा है कि अविद्यारूपी मूल के बने रहने

पर अथवा क्लेशरूपी मूलों के शेष रहने पर कर्माशय फल देते हैं। इससे वह यह कहना चाहता है कि यदि अविद्यामूल नष्ट हो गया तो कर्माशय फल नहीं देंगे। योग दर्शनकार इसे इस सूत्र में इस प्रकार प्रकट करता है—कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविध मितरेषाम्—योग० ४।७ अर्थात् तपः स्वाध्याय वालों का कर्माशय शुक्ल होता है, दुरात्माओं का कृष्ण होता है और बाह्य साधन की साधना वालों का शुक्लकृष्ण होता है तथा योगियों का कर्माशय अशुक्ल अकृष्ण होता है। कारण यह है कि मोक्ष के अधिकारी को ये कर्माशय फल नहीं देते। क्योंकि जन्म उसका होगा नहीं अतः आयु और भोग भी नहीं होंगे। योगदर्शन २।१३ के भाष्य पर व्यास कहते हैं कि—यथा तुषावनद्धाः शालितण्डुला अदग्ध बीजभावा प्ररोहसमर्था भवन्ति नापनीततुषा दग्धबीजभावा वा तथा क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति नापनीतक्लेशो न प्रसख्यानदग्ध क्लेशबीजभावो वेति। अर्थात् छिलके के साथ रहने वाले चावल का यदि बीजभाव नष्ट न हुआ हो तो अंकुर पैदा करते हैं। छिल्के से रहित अथवा जले हुये बीजभाव वाले चावल अंकुर नहीं पैदा करते। ऐसे ही अविद्या आदि क्लेशों से युक्त कर्माशय फल पैदा करते हैं इनसे रहित अथवा समाधि से दग्ध हुये बीजभाव वाले कर्माशय विपाक नहीं पैदा करते हैं। १२ वें सूत्र के भाष्यमें व्यासकहते हैं कि नारकी लोगोंका कर्माशय दृष्टजन्म वेदनीय नहीं होता है और क्षीण क्लेश लोगों का कर्माशय अदृष्ट जन्मवेदनीय नहीं होता है। यहां पूर्वोक्त यह सिद्धान्त कि "कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है" खण्डित नहीं होता है और न इससे सिद्धान्त में कोई विरोध ही आता है। परन्तु तफसील में इतने विकल्प मानने पड़े। सिद्धान्तभूत बात यह है कि "भले बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है।" परन्तु जब दर्शनकार को इसकी तफसील पर विचार करना पड़ा तो उसने उस सिद्धान्त की रक्षा में इतने विकल्प माने— १. कर्म फल के स्थान में कर्माशय का फल होता है यह कहना चाहिये। २. कर्माशय निश्चित विपाक वाले भी हैं और अनिश्चित विपाक वाले भी। ३ क्लेशों के होने पर कर्माशय फल देते हैं क्लेश के अभाव हो जाने पर नहीं। ४. नारकी लोगों के कर्माशय इतने जबर्दस्त होते हैं कि उनका फल इसी जन्म में सब नहीं भोगा जा सकता और मुक्ति के अधिकारियों के एव ज्ञानाग्नि से दग्ध कर दिये हुये कर्मों वालों के कर्माशय अगले जन्म में विपाक नहीं पैदा करते हैं। इन विकल्पों को देखते हुये क्या यह कहा जा सकता है कि ये कर्मफल सिद्धान्त के विरुद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त कर्म का सिद्धान्त एक और बात की ओर संकेत करता है। वह यह है कि कर्म का सिद्धान्त इतना ही नहीं है कि किये हुये शुभाशुभ कर्मों का फल जीव को होता है" अपितु वह इतना है कि "अपने किये हुये कर्मों का जीव को फल होता है और सरे कर्ममात्र से भी सुख दुःख प्राप्त होते हैं। यहां पर यह भी समझना चाहिए कि यह भी कर्मफल का सिद्धान्त नहीं है कि जीव को संसार में जो कुछ मिलता है और जो कुछ वह करता है सब पूर्वकृत कर्म के फल ही में होता है। ऐसा मानने पर कर्म का सिद्धान्त स्वयं खण्डित हो जावेगा। वस्तुतः जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। अगर यह मान लिया जावे कि कोई चीज बिना पूर्वकृत कर्मों के घट नहीं सकती तो फिर उसके वर्तमान कर्मों को भी पूर्वकृत कर्मों से प्रेरित हुआ मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, इस सिद्धान्त की हानि होगी। साथ ही साथ समस्या यह भी खड़ी होगी कि संसार में फिर भलाई बुराई क्या है? नियम यह है कि प्रत्येक सकर्मक

क्रिया कोई न कोई परिणाम पैदा करती है। अतः प्रत्येक इच्छापूर्वक किये गये कर्मों के कोई न कोई परिणाम होते हैं। एक अत्यन्त दीन हीन भूखे आदमी को किसी ने भोजन करा दिया। उसकी अन्तरात्मा सन्तुष्ट हो गई। सभी कहेंगे कि यह भला कर्म है। क्यों कि एक भूखे व्यक्ति को भोजन से सन्तुष्ट किया गया। यदि वह भूखा व्यक्ति कह यह उठे कि यह तो उसके पूर्वकृत कर्मों का फल उसे मिला है तो फिर कर्म कर्त्ता के कर्म को भला या स्वतन्त्र भलाई का कर्म कैसे कहा जा सकता है और इसके वह श्रेय का पात्र क्यों? एक धर्मात्मा व्यक्ति रास्ते में चला आ रहा है। किसी ने उसकी गर्दन तलवार से उतार दी। लोग कहेंगे यह निकृष्ट एवं पाप कर्म है। परन्तु यदि यह उसके द्वारा गर्दन का तलवार से काटा जाना उसके पूर्वकृत कर्मों के फल में हुआ तो फिर गर्दन काटने वाले को पापी क्यों कहा जावे? क्योंकि ऐसा होता तो फिर मरने वाले के पूर्व कर्म से निश्चित हो था। यहां इस प्रकार अनेक कठिनाइयां खड़ी हो जावेंगी। अतः कर्मफल का सिद्धान्त यह ठहरा कि—जीव को अपने किये हुये कर्मों का फल भोगना पड़ता है और दूसरे कर्म मात्र का भी उस पर सुख दुःख आदि के रूप में प्रभाव पड़ता है। अन्यथा पूर्वकृत कर्मों के फल रूप में मिले शरीर आदि को वर्तमान कर्म से भोजन देने आदि की आवश्यकता ही क्या थी? वे अपने आप पूर्वकर्मों से ही चलते रहते। परन्तु ऐसा नहीं होता।

जब कर्म का सिद्धात निश्चित हो गया तो फिर बिहार के भूकम्प और पाकिस्तान के विषय में भी उसी आधार पर विचार कर लेना चाहिए। बिहार के भूकम्प को ही प्रथम ले लीजिए। क्या यह कहा जा सकता है कि संसार में जितने भूकम्प होते हैं वे सब जीव के कर्मों के फल हैं? यदि किसी स्थान पर कुछ जमीन नीचे धंस जाती है। और किसी स्थान पर ज्वाला मुखी फूट निकलती है तो क्या यह सब जीव के पूर्व कृत कर्मों से है? यदि नहीं तो बिहार के भूकम्प को ही क्यों कर्मों का फल माना जावे? यदि भूकम्पों को जीव के कर्मों का फल माना जावे तो इसका मतलब यह होगा कि जीव के कर्म परमात्मा की उस व्यवस्था में भी दखल देते हैं जिससे वह प्रकृति का संचालन करता है। जीव नियमतः अपने कर्मों का फल परमात्मा की व्यवस्था में भोगता है। परमात्मा की व्यवस्था केवल कर्म फल देना मात्र ही तक सीमित नहीं। वह सृष्टि के संचालन आदि में भी है। जगत में उसकी व्यवस्था है और भूकम्प आदि उसके अन्तर्गत जगत् में घटते रहते हैं। ये जीवों के कर्मों के फल नहीं हैं। महात्मा गांधी ने बिहार के भूकम्प को वहाँ के लोगों के कर्मों का फल कहा था। परन्तु स्वर्गीय महात्मा नारायण स्वामी जी ने इसे घटना कहा था। वहाँ के लोगों के कर्मों का फल नहीं।

यदि बिहार के भूकम्प को वहां के लोगों के कर्मों का फल कहा जावे तो कहना पड़ेगा कि क्या बिहार के लोगों का सबका कर्म एकसा ही था? वहां सब एक प्रकार के कर्म वाले ही एकत्र हो गये थे? सब के कर्मों का फल एक ही साथ उपस्थित हो गया? जो नष्ट हो गये उनके कर्म बुरे थे? जो बच गये वे क्यों बचे? क्या वे धर्मात्मा थे इसलिये बच गये? यदि वे भी पापी हैं तो उन्हें भी बचना न चाहिये था क्योंकि उनके कर्मों के फल में वैसा होना चाहिये था। यदि वे धर्मात्मा हैं तो उन्हें फिर पापियों के कर्म फलमें हुयी घटना से दुःख क्यों उठाना पड़ा? एक समस्या यहाँ और खड़ी होती है कि यदि बिहार का भूकम्प वहां के लोगों के पूर्व कर्मों का फल था तो फिर उनकी सहायता करना व्यर्थ होगा। पहले तो उन्हें सहायता प्राप्त ही नहीं होनी

चाहिये क्योंकि उनको यह कष्ट उनके पूर्वकृत कर्मों के फल रूप में था। और शका कर्ता की दृष्टि से अपने कर्म फल के अतिरिक्त कोई चीज किसी को मिल ही नहीं सकेगी। यदि सहायता से उनको सुख प्राप्त हुआ या लाभ मिला तो यह कैसे ?

क्या पूर्वकृत कर्म के फल में प्राप्त दुःख पर सहायता के कार्य अपना प्रभाव डालकर दुःख को दूर कर सकते हैं ? यदि ऐसा हो सकता तो क्या शंका कर्ता के अनुसार माने गये कर्मफल के सिद्धान्त में बाधा नहीं आती। यदि बिहार का भूकम्प वहां के लोगों के कर्मों का फल था और वह दुःख उन्हें उनके कर्मानुसार परमात्मा की व्यवस्था में फल रूप में ही मिला था तो फिर किसी प्रकार की उनकी सहायता उचित नहीं। क्यों कि यह परमात्मा की व्यवस्था को चेलेन्ज देना है और कर्मफल को टालने की बात है। सहायता के कर्म ऐसी अवस्था में धर्म नहीं। दान देने वालों ने फिर तो धर्म के स्थान में पाप किया। परन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करेगा। अतः इन सब बातों को देखकर यही मानना चाहिये कि यह एक घटना है।

दूसरी बात पाकिस्तान की है। यदि पाकिस्तान का होना, ऐसे दुखों का उपस्थित होना वहां के लोगों के पूर्वकृत कर्मों का फल था तो फिर यही बात वर्तमान स्वेज समस्या और अन्य समस्याओं के लिये भी माननी पड़ेगी। जितने लोग पाकिस्तान में पहले थे क्या सब के कर्म एक साथ ही फलोन्मुख हो गये कि इस महान संकट को उन्हें सहना पड़ा ? सिन्ध, फ्रान्टियर और पश्चिमी पन्जाब की सारी आबादी क्या ऐसे ही कर्म वालों की थी ? क्या वहां धर्मात्मा कोई था ही नहीं ? यदि धर्मात्मा लोग भी थे तो उन्हें कष्ट क्यों भोगना पड़ा ? जब सारी चीजें कर्म के फल में ही थीं तो फिर Compensation की मांग करने वालों को भी सोचना पड़ेगा। वे अपने कर्मों के फल में नष्ट हुये का मुआवजा मांग कर परमात्मा और कर्म के सिद्धान्त के साथ बगावत खड़ी कर रहे हैं। एक प्रश्न विचारने का है कि पाकिस्तान की स्थापना और उसमें होने वाले रोमांचकारी घोर अत्याचारों को पाप एवं बुरा कर्म कहा जावे या प्रशस्त कर्म कहा जावे। यदि यह पाप कर्म है तो फिर यह मानना पड़ेगा कि पूर्वकृत कर्मों का फल परमात्मा की व्यवस्था में मिला हुआ पाप कैसे हुआ ? क्या वह भी ऐसे फल देता है ? यह प्रशस्त कर्म है तो दुनियां में पाप किस वस्तु को कहा जावेगा तथा इसे बुरा क्यों कहना चाहिये ? जब यह है ही प्रशस्त तो इसे सौभाग्य समझना चाहिये बुरा मानने की क्या आवश्यकता ? परन्तु कोई भी बुद्धिमान इसे प्रशस्त एवं पुन्य कर्म नहीं मानेगा। इन कठिनाइयों को देखते हुये यहां पर यही मानना सिद्धान्तभूत है कि यह दूसरों से होने वाला अत्याचार रूप स्वतन्त्र कर्म है जिसके परिणाम में इतना दुःख लोगों को भोगना पड़ा, यह हमारे कर्मों का फल नहीं।

अब शंकागत दूसरे भाग को लेकर कुछ विचार प्रस्तुत करता हूँ। जिस उद्धरण पर यह शंका उठाई गई है वह आर्य समाज के सिद्धान्त के भी विरुद्ध नहीं है। आर्य समाज तीन प्रकार की दृष्टियों से अपने सिद्धान्तों को निर्धारित करता है। वे तीन हैं—(१) जो तर्क और बुद्धि के अनुकूल हो, (२) जो वेद और सत्य शास्त्रों के अनुकूल हो और (३) जो ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों एवं आर्य समाज के नियमों तथा उनके द्वारा नियत किये मन्तव्यों के विरुद्ध न हो। मेरा दिया गया पूर्वोक्त उद्धरण जो कर्म के सम्बन्ध में एक विवरण है, इनमें किसी के भी प्रतिकूल नहीं है। तर्क

और बुद्धि के अनुकूल है इस बात को पहले की पंक्तियों में कर्म फल के सिद्धान्त का निर्धारण करते हुए दिखला ही दिया गया है। यह कर्म फल का सिद्धान्त वेद और सत्य शास्त्रों के भी विरुद्ध नहीं। वेद भी कर्म फल के सिद्धान्त को ऐसा ही मानता है जैसा ऊपर दिखलाया गया है। अर्थात् अपने किये कर्मों का जीव को फल मिलता है तथा दूसरे कर्म मात्र का भी फल नहीं प्रभाव अवश्य पड़ता है। ऋग्वेद सातवें मण्डल के ३५ वें सूक्त के चौथे मन्त्र से यही अभिप्राय सिद्ध होता है। यह मन्त्र संस्कार विधि के शान्तिप्रकरण में भी है और निम्न प्रकार हैं :—

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रा वरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः॥

मन्त्रमें प्रार्थना कीगई है कि ज्योतिर्मान अग्नि, मित्र, वरुण और अश्विनी आदि प्राकृतिक शक्ति एवं पदार्थ हमारे लिए कल्याणकारक हों, उत्तम कर्म करनेवालों के उत्तम कर्म हमारे लिये कल्याणकारी हों और सर्वत्र गमनशील हवा सुखावह हो। ऋषि दयानन्द ने भी इस मन्त्र का अर्थ करते हुए लिखा है कि "अच्छे धर्माचरण करने वालों के धर्माचरण हमारे लिये सुखकारक हों।" यहाँ मन्त्र में स्पष्ट बतलाया गया है कि उत्तम कर्म करने वालों के सुकर्म हमें कल्याणकारी हों। इन सुकर्मों का फल तो हमें मिल नहीं सकता क्योंकि यह करने वालों को मिलेगा। परन्तु इनका उत्तम प्रभाव हम पर अवश्य पड़ सकता है अतः तन्निमित्त यह प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद १९। १०। ४ पर भी यही मन्त्र आया है।

अथर्ववेद १९। ९।१४ मन्त्र में अन्त का पाठ निम्न प्रकार पाया जाता है :—

ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥

अर्थात् इन शान्तियों से हम जीवन में जो घोर है, जो क्रूर है और जो पापात्मक है उसको दूर करें। संसार में जो बुरा भी है वह हमें शान्ति और कल्याण की ओर ले जावे अर्थात् हम उससे दूर रहें। सब कुछ हमारे लिये कल्याणकारी हो। यहाँ बुरे कर्मों का प्रभाव बुरा पड़ता है अतः उनसे हम बचें, इस भाव को प्रकट किया गया है। सिद्धान्ततः यह भाव निकला कि उत्तमों के उत्तम कर्म हमारे लिये सुखकर हों और दूसरे दुःखकारी कर्मों के प्रभाव से हम बचें।

भूकम्प कर्म फल नहीं प्राकृतिक घटना है इस पर भी अथर्व० १९। ९। ७ वां मन्त्र प्रकाश डालता है। इस मन्त्र में प्रार्थना है कि ये उत्पात भी हमारे लिए शान्तिकर हों। यदि ये सब कर्म फल होते तो फिर शान्ति प्रार्थना की व्यवस्था नहीं बन सकती। कर्म फल तो किये का फल है और वह कृत के कर्माशय के स्वभावानुसार होगा। मन्त्र निम्न प्रकार है :—

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः। उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः॥

अर्थात् मित्र, वरुण, विवस्वान् और अन्तक, (कालगति) पृथ्वी सम्बन्धी और अन्तरिक्ष सम्बन्धी उत्पात एवं आकाशीय समस्त लोक लोकान्तर जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में ग्रह और उपग्रह कहा जाता है हमारे लिये सुखकर हों। भूकम्प भी एक पार्थिव उत्पात ही है।

आगे ८ वें और ९ वें मन्त्र में यह बात और अधिक स्पष्ट कर दी गई है। वे मन्त्र इस प्रकार हैं :—

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् । शं नो गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव-तीर्यतीः ॥८॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु न शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमुसन्तु कृत्याः । शं नो निखाताः वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥

यहां पर पूरे मन्त्रार्थ को न देते हुए संक्षेप में इतना ही कहना अभिप्रेत है कि ८ वें मन्त्र में भूमि को वेप्यमाना कहा गया है । उल्का का भी वर्णन है । अतः यह समझना चाहिये कि ये प्राकृतिक घटनाएं हैं । कर्म फल के प्रदर्शन नहीं ।

साथ ही पूर्वोक्त उद्धरण जिस पर शंका की गई थी उसका आधार भूत सिद्धान्त शास्त्र विरुद्ध भी नहीं । योगदर्शन के प्रमाण से कर्मफल का सिद्धान्त ऊपर दिखला ही दिया गया है । न्यायदर्शन में भी कम विषय में जो विवेचना की गई है वह उक्त विषय की पोष्टिका है । विस्तार भय के कारण यहां उसका वर्णन नहीं किया जाता है ।

यह माना गया कर्म सिद्धान्त ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों और उनके द्वारा बनाये गये आर्य समाज के नियमों और मन्तव्यों के विरुद्ध भी नहीं पड़ता है । ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास पृ० १९३ (सार्वदेशिक छापा) पर कहते हैं "जैसे जीव अपने कामों को करने में स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है ।" यह व्यवस्था तभी बन सकती है जब पूर्व निर्दिष्ट कर्म सिद्धान्त को माना जावे । ऋषिवर स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में लिखते हैं – सृष्टि का प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना......। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी। यहां सृष्टि प्रयोजन ऋषि ने स्पष्ट किया है। सृष्टि में जीवों के कर्म फल का भोग और परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव एवं नियम की सफलता आदि सम्मिलित है । यह सब ईश्वर की व्यवस्था से चलते हैं । समस्त सृष्टि की घटनाओं को केवल जीवों के कर्म फल की दृष्टि से ही नहीं मापा जा सकता और न समस्त घटनाओं को केवल ईश्वर की स्वतन्त्रता पर ही लादा जा सकता है। कर्म फल का सिद्धान्त ऐसा होना चाहिये कि वह ईश्वर की स्वतन्त्रता उसके नियम और जीव के कर्म की स्वतन्त्रता पर आक्रमण न करे और ईश्वर की स्वतन्त्रता का यह भाव नहीं लिया जाना चाहिये कि वह जीव के कर्मों की स्वतन्त्रता और कर्म फल की सीमा को तोड़ दे । संसार में समस्त परिवर्तन केवल हमारे कर्मों के ही फल नहीं हैं, उनमें ईश्वर के ईक्षण, नियम और व्यवस्था भी काम कर रहे हैं, इस बात का ख्याल भी रखना चाहिये ।

पुनः स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में ऋषि कहते हैं कि "पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इस लिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते और जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध से पुरुषार्थ बड़ा है ।" यह पुरुषार्थ और प्रारब्ध की व्यवस्था भी ठीक तभी बन सकती है जब कि कर्म के पूर्व दिखलाये गये सिद्धान्त को माना जावे ।

शंका के तीसरे भाग को लेकर यही समाधान दिया जाता है कि वह समुचित और युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि जब आर्य समाज पूर्व जन्मों के कर्म फल को मानता है तो भूकम्प आदि घटनायें कर्म फल क्यों नहीं ? ऐसा शंका कर्ता ने तर्क किया है । यदि यही तर्क है और कर्म फल का आधार है तो फिर अनेकों आपत्तियां खड़ी हो जावेंगी ।

अणु शक्ति

१६, १७ वीं शताब्दी के बाद से मानव मस्तिष्क का ध्यान इस ओर गया। उसने विश्व की ईंट और मसालों पर विचार करना प्रारम्भ किया। १७, १८ वीं शताब्दी में Dalton Avagadros वगैरह विद्वानों ने विश्व की महान् अट्टालिका की ईंटों का पता लगाया। अन्ततः वर्त्तमान युग में Norvegian Physicist Bohr एक मानव मस्तिष्क ने पता लगाया कि ये ईंटें किस प्रकार की मिट्टी से, और किस प्रकार के ढांचे से बनी हुई हैं, इन ईंटों का नाम रखा गया परमाणु(Atom)

सारा विश्व इन छोटे २ परमाणुओं से बना हुआ है, ये परमाणु विभिन्न आकार के होते हैं, कोई बड़े कोई छोटे। एक परमाणु की उपमा एक सौर्य मंडल से दी जा सकती है। सौर्य मडल की तरह इसके केन्द्र Nuclues सूर्य के सदृश विद्यमान रहता है, उसके चारों ओर ग्रह उपग्रहों के सदृश परमाणु के ऋणात्मक विद्युत कण Negative Electrones अपने निश्चित पथ पर चलते हुए Nuclues का चक्कर लगाया करते हैं, एक परमाणु के चार भाग होते हैं ? ऋणात्मक विद्युत् कण, Electrones (२) घनात्मक विद्युत् कण जिसे ध्वंश Proton और Positrone कहते हैं। Neu'rone जो न तो ऋणात्मक होते हैं, न घनात्मक ही। Neutrone Positrone मिलकर Nuclues का निर्माण करते हैं, और Electones जिसकी संख्या Proton के बराबर होती है Nuclues के चारों ओर अपने २ निश्चित मार्ग पर घूमा करते हैं, प्रत्येक Electron के अन्दर में एक शक्ति अन्तर्निहित है, जिसके कारण वे Nuclues का चक्कर लगाया करते हैं, जिससे विद्युत् शक्ति पैदा की जा सकती है।

सबसे महत्व की बात यह है कि Electrone या Neutron यदि किसी प्रकार किसी परमाणु से हटा लिये जायें और उनके अन्दर प्रकाश, अथवा उससे भी अधिक गति दे दी जाय तो उस गति शक्ति Electrone या Neutron के अन्दर विकराल शक्ति निहित हो जाती है, आज अमेरिका के वैज्ञानिक इसी मुख्य विषय पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

उन्होंने एक अद्भुत धातु का पता लगाया, जिसे कहते हैं युरेनियम, यह धातु अत्यधिक अस्थिर है Unstable धातु है अर्थात् इसके परमाणु साधारण चोट अथवा किसी भी साधारण शक्ति Force के द्वारा तोड़े जा सकते हैं, परमाणु

कोई यह कह सकता है कि जब आर्य समाज पूर्वजन्मों के कर्म फल को मानता है तो पृथ्वी का घूमना, समुद्र की चीत्कार और गंगा का हिमालय से ऊपर न जाकर नीचे उतरना, पृथ्वी और ग्रहों के आकर्षण आदि कर्म फल क्यों नहीं ? इसी आधार पर कोई यह भी कह सकता है कि बैल का दूध न देना भी कर्म फल क्यों न माना जावे। तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे तर्क तर्क नहीं हैं। कर्मगति विचित्र है। उसके विवरण तो और भी जटिल हैं। आर्य समाज जिस कर्मफल के सिद्धान्त को मानता है बहुत ही व्यापक और दार्शनिकत्व की दृष्टि से ओत प्रोत है। उसका विचार दार्शनिक दृष्टि से करना पड़ता है। इसके लिये हमें अधिकाधिक सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये! मेरे द्वारा लिखित कर्म मीमांसा में इसका विस्तार से वर्णन है। उसे देखना चाहिये।

के टूटने के बाद, Neutron, Proton Electrone अलग अलग हो जाया करते हैं, यदि इस नवजात न्यूट्रन के अन्दर किसी भौतिक Physical उपाय से प्रकाश की गति समावेशित कर दी जाय तो यह तीव्र गतिमान् Neutron अपने समीपस्थ वस्तुओं के परमाणुओं को तोड़ देगा और उनमें उसी प्रकार की गति एवं शक्ति निहित कर देगा, वे Neutron पुनः अपने समीपस्थ वस्तुओं के परमाणुओं को तोड़ेंगे, इस प्रकार की क्रिया इतनी शीघ्र एवं इतने विशाल परिमाण में होने लग जाती है कि मीलों क्षेत्र में विस्फोट हो जाता है, आपके परमाणु बम की रचना इसी आधारशिला पर अवस्थित है, इसी Neutron की शक्ति को Atomic Energy कहते हैं।

जहां यह परमाणु शक्ति अत्यधिक विध्वंसात्मक है, वहां यह रचनात्मक भी है, प्रत्येक वस्तु परमाणुओं से बनी हुई है, भिन्न २ वस्तुओं के Neutron, Electrone इतने भिन्न२ संख्या में पाये जाते हैं, युरेनियम के कारण कई परमाणुओं के विध्वंस से उनके ये भाग अलग अलग हो जाते हैं. किन्तु ये भाग अधिक देर तक अलग नहीं रह सकते हैं, अतः परमाणु विध्वंस की प्रतिक्रिया के बाद भिन्न२ संख्या में Neutron, Proton इत्यादि एक स्थान पर एक दूसरे से आकर्षित हो एकत्रित होने लग जाते हैं, इस एकीकरण के द्वारा भिन्न २ प्रकार के परमाणुओं का निर्माण हो जाता है, इस प्रकार के असंख्यक परमाणु एकत्र होकर किसी ध्वंस का निर्माण कर देते हैं। सारांश यह कि इस Atomic Power से भिन्न २ पदार्थों का निर्माण हो जाता है, जो आज तक मानव मस्तिष्क के लिये स्वप्नवत् था, वैज्ञानिक इसे निर्माण कार्य पर नियन्त्रित करने के लिये प्रयत्नशील हैं, एक दिन ऐसा आयेगा जब हम अपने जीवन के आवश्यक पदार्थों के लिये प्रकृति के मुहताज नहीं रहेंगे, उन पदार्थों की जिनकी आज संसार में कमी हो रही है, जैसे पेट्रोल, गंधक, सोना, प्लेटिनम, रेडियम, इत्यादि हम स्वयं निर्माण करने लग जायेंगे,

यहीं नहीं हम आगे चलकर, शक्ति के लिये, उदाहरण स्वरूप, जलशक्ति, वाष्पशक्ति, विद्युत् शक्ति इत्यादि के लिये भी प्रकृति पर निर्भर नहीं रहेंगे,हम उस Nentron की गति को, शक्ति को अपने विशालकाय कारखानों के चलाने में काम लायेंगे, तब हमारे वायुयान और अधिक तीव्रता से बिना पेट्रोल के इस आकाश का भेद न किया करेंगे, हमारे जहाज समुद्र की छाती को चीरने में और भी सफल हो जायेंगे।

आकाशवाणी, लखनऊ

कैयट की निःस्पृहता

महाभाष्य तिलक के कर्त्ता संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् कैयट जी नगर से दूर एक झोंपड़ी में निवास करते थे। उनके घर में सम्पत्ति के नाम पर एक चटाई और एक कमण्डलु मात्र थे। उन्हें तो अपने सन्ध्या, अध्ययन और ग्रन्थ लेखन से इतना भी अवकाश न था कि पत्नी से पूछ सकें कि घर में कुछ है भी या नहीं। बेचारी ब्राह्मणी बन से मूंज काट लाती, उनकी रस्सियां बनाकर बेचती और उससे जो कुछ मिलता उससे घर का काम चलाती। उसके पतिदेव ने उसे मना कर दिया था कि किसी का कुछभी दान न ले। पति की सेवा उनके तथा अपने भोजन की व्यवस्था तथा घर के सारे काम उसे करने थे और वह यह सब करके परम सन्तुष्ट थी।

काश्मीर के नरेश को लोगों ने यह समाचार दिया। काशी से आये हुए कुछ ब्राह्मणों ने कहा, 'एक महान् विद्वान् आपके राज्य में इतना कष्ट पाते हैं, आप कुछ तो ध्यान दें।'

नरेश स्वयं कैयट की कुटिया पर गये। उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की 'भगवन्! आप विद्वान हैं और जानते हैं कि जिस राज्य में विद्वान् ब्राह्मण कष्ट पाते हैं, वह पाप का भागी होता है. अतः मुझ पर कृपा करें।'

कैयट जी ने कमंडलु उठाया और चटाई समेट कर बगल में दबाई। पत्नी से बोले 'अपने रहने से महाराज को पाप लगता है तो चलो कहीं चलें। तुम मेरी पुस्तकें उठा लो।"

नरेश चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़ कर बोले "मेरा अपराध क्षमा किया जाय। मैं तो यह चाहता था कि मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा प्राप्त हो।"

कैयट जी ने कमण्डलु चटाई रख दी। वे राजा से बोले 'तुम सेवा करना चाहते हो तो यही सेवा करो कि यहां मत आना और न अपने किसी कर्मचारी को यहां भेजना। न मुझे कभी किसी चीज, धन, जमीन आदि का प्रलोभन ही देना। मेरी पढ़ाई लिखाई में विघ्न न पड़े यही मेरी सब से बड़ी सेवा है।" ———

सच्ची शोभा

श्रीराम शास्त्री अपनी न्याय प्रियता के लिये महाराष्ट्र के इतिहास में अमर हो गये हैं। वे पेशवा माधव राव जी के गुरु थे, मन्त्री थे और राज्य के प्रधान न्यायाधीश भी थे। इतना सब होकर भी वे रहन-सहन में केवल एक ब्राह्मण थे। एक साधारण घर में रहते थे जिसमें न कोई तड़क-भड़क थी और न कोई वैभव था।

किसी पर्व के समय श्रीराम शास्त्री की पत्नी राजभवन में पधारीं। रानी तो अपने गुरु और राज्य के प्रधान न्यायाधीश की पत्नी को देखते ही चकित हो गईं। राज गुरु की पत्नी और उनके शरीर पर सोना तो दूर कोई चांदी तक का आभूषण नहीं। पहनने की साड़ी भी बहुत साधारण। रानी को लगा कि इससे तो राजकुल की निन्दा है, जिस गुरु के घर पेशवा प्रतिदिन प्रणाम करने जायं उस गुरु की पत्नी इस प्रकार दरिद्र वेशमें रहे तो लोग पेशवा की निन्दा करेंगे।

रानी ने गुरु पत्नी को बहु मूल्य वस्त्र पहिनाये

रत्न जटित सोने के आभूषणों से अलंकृत किया। जब उनके विदा होने का समय आया तो पालकी में बिठा कर विदा किया। पालकी राम शास्त्री के द्वार पर पहुंची। कहारों ने द्वार खटखटाया। द्वार खुला और झट बन्द हो गया। अपनी स्त्री को इस वेष में राम शास्त्री ने देख लिया था। कहारों ने फिर पुकारा 'शास्त्री जी!' आपकी धर्म पत्नी आई हैं। द्वार खोलो।

शास्त्री जी ने कहा, बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजी ये कोई और देवी हैं। मेरी ब्राह्मणी ऐसे वस्त्र और गहने नहीं पहन सकतीं। तुम भूल से इस द्वार पर आ गये हो।'

शास्त्री जी की पत्नी अपने पतिदेव के स्वभाव को जानती थीं। उन्होंने कहारों को लौट चलने को कहा। राजभवन में जाकर उन्होंने वे वस्त्र और आभूषण उतार दिये। अपनी साड़ी पहन ली। रानी को उन्होंने बता दिया, इन वस्त्र और आभूषणों ने तो मेरे लिये मेरे घर का ही द्वार बन्द करा दिया है।"

यह देवी पैदल ही घर लौटी। द्वार खुला हुआ था। शास्त्री जी ने घर में आ जाने पर उनसे कहा, "बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण या तो राजपुरुषों को शोभा देते हैं या मूर्खोंको जोउनके द्वारा अपनी अज्ञता छिपाने का यत्न करते हैं। सत्पुरुषों का आभूषण तो सादगी ही है। यही सच्ची शोभा है।

———

ईश्वर के साथ

सन्त खैयास अपने शिष्य के साथ बन में जा रहे थे। नमाज का समय हुआ और नमाज पढ़ने लग गये। इतने में ही पास में सिंह ने गर्जना की। शिष्य के प्राण सूख गये। वह भाग कर वृक्ष पर चढ़ गया।

सिंह आया और चला गया। खैयास की तरफ उसने देखा तक नहीं और खैयास को ही कहां फुरसत थी कि सिंह की ओर देखते। वे नमाज पढ़ रहे थे, चुपचाप नमाज पढ़ते रहे। सिंह के चले जाने पर शिष्य भी पेड़ से उतरा और उसने भी नमाज पढ़ी।

नमाज पूरी हुई। दोनों ने चद्दर उठाई और रास्ता पकड़ा। अचानक एक मच्छर ने खैयास की नाक पर बैठ कर काटा। खैयास चीख उठे। शिष्य बोला, 'सिंह पास से चला गया तब तो आपने उसकी ओर देखा तक नहीं और अब नन्हें से मच्छर काटने से चीख रहे हैं।"

खैयास बोले "भाई! उस समय मैं खुदा के साथ था और इस समय मनुष्य के (तेरे) साथ हूँ।"

संयम मनुष्य को महान् बनाता है

अपने अध्ययन के दिनों में नैपोलियन को एक बार अक्लोंनी नामक स्थान में एक नाई के घर रहना पड़ा था। नैपोलियन बहुत सुन्दर युवक थे और उनकी आकृति सुकुमार थी। नाई की स्त्री उन पर मुग्ध हो गई और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने लगी किन्तु नैपोलियन को तो अपनी पुस्तकों से अवकाश ही न था। वह स्त्री जब उनसे हंसने बोलने का यत्न करती तभी उन्हें किसी न किसी पुस्तक को पढ़ने में निमग्न पाती।

जब नैपोलियन देश के प्रधान सेनापति चुने जा चुके, तब फिर उस स्थान में एक बार गये। नाई की स्त्री दूकान पर बैठी थी। वे उसके सामने जा खड़े हुए और बोले—'तुम्हारे यहां एक बोनापार्ट नाम का युवक रहता था, कुछ स्मरण है तुम्हें उसका?'

नाई की स्त्री झुंझला कर बोली—'रहने भी दीजिये महोदय! ऐसे नीरस व्यक्ति की चर्चा करना मैं नहीं चाहती। उसे न गाना आता था न नाचना। किसी से मुंह भर मीठी बात करना तक उसने नहीं सीखा था। पुस्तक, पुस्तक और पुस्तक—वह तो बस, पुस्तकों का कीड़ा था। नैपोलियन हंसे—'ठीक कहती हो देवी! संयम ही मनुष्य को महान् बनाता है। बोनापार्ट तुम्हारी रसिकता में उलझ गया होता तो देश का प्रधान सेनापति होकर आज तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकता था।'

महर्षि-जीवन
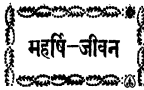
शंका समाधान

जहाँ आर्य समाज न हों वहां आर्यों का क्या कर्तव्य है ?

एक भक्त ने स्वामी जी से पूछा 'भगवन ! जहां आर्य समाज न हों वहां आर्य जनों को अपने धार्मिक जीवन को परिपुष्ट करने के लिए क्या उपाय करना चाहिये ?' महाराज ने कहा, जब कोई आर्य एकाकी हो तो उसे स्वाध्याय करना चाहिये। दो आर्यजन हों तो उन्हें परस्पर प्रश्नोत्तर और सम्वाद करने चाहिये ! यदि दो से अधिक आर्य एकत्र हों तो उन्हें चाहिये कि परस्पर सत्संग करें, किसी धर्म ग्रन्थ का पाठ सुनें सुनायें।

मेरा खण्डन करना हित और सुधार से भिन्न और कुछ नहीं है

काशी में एक दिन पंडित हरिश्चन्द्र जी ने महाराज से निवेदन किया "महाराज ! आपके खण्डन करने से लोगों में बैर-विरोध बहुत बढ़ता है।"

महाराज ने अपने हाथों को मिलाकर कहा "मेरा उद्देश्य लोगों को इसप्रकार आपस में मिलाना है। सकल समुदायों को एकता में लाना है। मैं चाहता हूँ कि कोल-भील से लेकर ब्राह्मण-पर्यन्त सब में एक ही जातीय जीवन की जागृति हो। चारों वर्ण के लोग एक दूसरे को अङ्ग अङ्गी समझें। परन्तु क्या करें सुधार के बिना मिलाप होना असम्भव है। मेरा खंडन करना हित और सुधार से भिन्न और कुछ नहीं है।"

कहीं पौराणिक लोग हमें तो न ले डूबेंगे ?

लखनऊ में श्री रामाधार जी ने पूछा, महाराज ! आप इतना पुरुषार्थ करते हो परन्तु लोग पौराणिक लीलाएं छोड़ते ही नहीं ? उन्हीं लोगों में रह कर सुधार कैसे होगा ? ये कहीं हमें न ले डूबें।

स्वामी जी ने कहा 'ब्राह्मसमाजियों और ईसाइयों की तरह पृथक होकर, सामूहिक जीवन की मात्रा घटा देना हमारा उद्देश्य नहीं है। इन्हीं लोगों में रहते हुए अपने कर्त्तव्य कर्म को करते जाओ। वैदिक धर्म का प्रचार करो। यदि वे लोग आपका विकट विरोध करें और आप से घोर घृणा करें तब भी इनको अपनाने का प्रयत्न करो। परन्तु अपनी धर्म धारणा से तिल भर भी इधर उधर न हटो। अन्त में ये सब आपका रूप बन जायेंगे। उतावली से कुछ मनुष्य आगे निकल सकते हैं परन्तु शोभा सब को साथ लेकर आगे बढ़ने में है।"

बदला लेने की भावना अभद्र है

फर्रुखाबाद में कुछ उद्दण्ड लोगों ने मिलकर एक आर्य सभासद् को मारा पीटा था और अभि-

योग चलने पर उनको स्काट महोदय के न्यायालय से दण्ड मिला था। जब स्वामी जी वहां पधारे तो आर्य पुरुषों ने अपनी विजय का समाचार बड़े हर्ष से उन्हें सुनाया। स्वामी जी ने कहा, हमें लोगों के कठोर हृदयों को कोमल बनाना है। दूर भागतों को आकृष्ट करना है। यदि वे अत्याचार करें तब भी अपने ऊंचे उद्देश्य को दृष्टि में रख कर हमें उनसे प्रेम ही करना चाहिये। धर्म के नाम से बदला लेने की भावना सर्वदा अभद्र है।

स्काट महाशय ने जब महाराज से भेंट की तो प्रशंसावश कहा 'आपके एक सेवक को कुछ दुष्टों ने पीटा था। उनको उचित दण्ड मिल गया है। आप सन्तुष्ट हैं न?'

स्वामी जी ने उत्तर दिया 'महाशय! संन्यासी लोग तो अपने प्राण घातक को भी पीड़ा पहुंचते देखकर प्रसन्न नहीं होते। इस आश्रम में अपने पराये सब समान समझे जाते हैं।' महाराज की उदारता से स्काट महाशय बड़े प्रभावित हुए।

क्या गृहस्थ लोग उपकार का कार्य नहीं कर सकते?

रमाबाई ने स्वामी जी से पूछा, 'क्या गृहस्थ जन उपकार का कार्य नहीं कर सकते? उन्हें भी तो पुण्य कर्म की पूंजी उपार्जन करने का पुष्कल अवकाश मिल जाता है?'

स्वामी जी ने कहा "बन्धु बान्धवों के विविध बन्धनों में जकड़े हुए जन परहित का उतना कार्य नहीं कर सकते जितना एक ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी कर सकती है। जो जन एक-दो व्यक्तियों को अपने प्रेम का केन्द्र बना लेते हैं उनमें परहित-साधना की मात्रा सहज ही कम हो जाती है। उन्हें काम धन्धों से अवकाश ही नहीं मिलता। जब मनुष्य गृहस्थी के गहरे गढ़े में गड़ जाता है तब परोपकार के भाव एक २ करके भूलने लग जाते हैं।"

अपने ही किए कर्म का फल मिलता है

मेरठ में श्री निहालचन्द्र जी ने प्रश्न किया 'महाराज! एक मनुष्य ने अपने जीवन काल में बहुत धन एकत्र किया। वह काल वश मर कर ऐसे वैसे जन्म में चला गया है। उसके एकत्र किये धन को यदि उसके पुत्र पौत्र श्राद्धादि शुभ कर्मों में लगाते हैं तो उस कर्म का उसको लाभ क्यों नहीं होना चाहिये?'

महाराज ने उत्तर दिया 'अपने ही किये कर्म का फल मिलता है। यदि पीछे छोड़े अपने धन से शुभ कर्मों का फल मानों तो पिता पितामह की सम्पत्ति पाकर पुत्र पौत्र जो घृणित दुष्कर्म करते हैं उनका पाप भी मृतक आत्मा को ही लगाना चाहिये।"

★

स्वाध्याय का पृष्ठ

हृदय रोग

अमेरिका में सीमा से अधिक यांत्रिक जीवन बन जाने के परिणाम स्वरूप शारीरिक व्यायाम के अभाव में वहां हृदय रोग सबसे अधिक घातक बन गया है। इस रोग का एक अप्रत्यक्ष कारण यह है कि लोग निरन्तर मोटरों में यात्रा करते हैं। बच्चे तक भी प्रायः कारों में घूमते और खुली वायु में घूमने और शरीर का कुछ व्यायाम होने देने के स्थान में टेलीविजन के यंत्रों के सामने लेटकर अपना शाम का समय बिताते हैं। यदि किसी अन्य व्यायाम की सुविधा न हो तो उन्हें कम से कम बाईसिकल पर घूमना चाहिए या अपने दफ्तरों आदि में पैदल चल कर जाना चाहिये अथवा बस के पीछे दौड़ लगानी चाहिए।

(प्रेसीडेन्ट आइज़न हावर
के हृदय रोग के विशेषज्ञ
वयक्तिक चिकित्सक डा० पाल व्हाइट
की सम्मति इंडियन रिव्यू दिसम्बर पृ० ४११)

उपनिषदों का प्रेरणा स्थल वेद है

"समस्त उपनिषदों में एक बात समान रूप से उपलब्ध होती है और वह यह है कि वे सब वेद संहिताओं के सामने नत मस्तक होते और वेद मंत्रो के सत्य का प्रकाश करते हैं। अपने निष्कर्षों के समर्थन में भी वेद मन्त्रों को प्रस्तुत करते हैं। मुख्य मुख्य उपनिषदों में कदाचित ही कोई उपनिषद होगा जो अपने प्रमाण के लिए वेद के ऋषियों का उल्लेख न करता हो। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि उपनिषद ज्ञान के भंडार हैं परन्तु हमारी यह मान्यता भी है कि वेद उपनिषदों और ब्राह्मणग्रन्थों का स्रोत और सहारा है। हम यह भी मानते हैं कि उपनिषद् श्री अरविन्द जी के शब्दों में "उपनिषदों में वैदिक मस्तिष्क, उसकी प्रवृत्ति और मौलिक विचार धारा का क्रान्तिकारी अतिक्रमण नहीं हुआ है अपितु वह विचार धारा जारी रहकर विकसित होती रही है और कुछ सीमा तक इस दृष्टि से उसकी विस्तृत काया पलट हुई है कि वैदिक वाङ्मयमें जो बात भूठ और गुप्त समझी जाती थी वह प्रकाश में लाई गई है।"

(श्री टी० पी० कपाली
शास्त्री कृत 'उपनिषदों पर
प्रकाश' पुस्तक पृ० १६१-१६२)

कैंसर का कारण मानसिक चिन्ता

The most majority of cases of cancer specially of heart and uterine, cancer are due to mental anxiety is reported by Dr. Churton in the

British Medical Journal. Dr. Mur Chison an eminent authority says. "I have been surprised how often patients with primary cancer of the liver have traced the cause of their ill health to protected grief or anxiety. The cases have been far too numerous to be accounted for as mere coincidences. The function of the skin are seriously affected by emotions.

डा० चर्टन ने ब्रिटिश मैडिकल जर्नल में अपने अन्वेषण की घोषणा करते हुए लिखा है कि चिन्ता से पांडु रोग का उत्पन्न होना निश्चित सा है। श्री डा० मर्चीसन कहते हैं कि 'जब कभी मैं देखता हूँ कि जिगर में कैंसर होने वाले कितने ही रोगियों के रोग का वास्तविक उनका बहुत देर तक दुःख तथा चिन्ता के सागर में डूबे रहना है तो मुझे आश्चर्य होता है। इतने अधिक रोगियों की अवस्था में मैंने यह बात देखी है कि इसे केवल संयोग जन्य नहीं कहा जा सकता। भावातिरेक का मनुष्य के चमड़े पर भी गंभीर प्रभाव पड़ता है।"

(श्री आनन्द स्वामी जी कृत प्रभु दर्शन ग्रन्थ पृ० २६)

शराब से निकृष्ट संतान की उत्पत्ति

नशे की अवस्था में रति प्रसंग से जिन बच्चों की सृष्टि होती है वे निकृष्ट कोटि के होते हैं, यह पुरानी मान्यता निराधार नहीं है। १६०० की स्वीटजरलैंड की जन गणना पर विश्वास करते हुए जिसमें ६००० महा मूर्ख पाये गये हैं यह सिद्ध किया गया है कि महा मूर्खों की सृष्टि के वर्ष में दो काल होते हैं। एक तो आनन्दोत्सव का समय और दूसरा अंगूरों की फसल का समय जब कि लोग बहुत शराब पीते हैं। शराब उत्पन्न करने वाले जिलों में अंगूर की फसल के समय लोग शराब में उन्मत्त होकर रति प्रसंग में अत्यधिक मस्त हो जाते हैं अन्य अवसरों पर बहुत कम प्रवृत होते हैं।

(फ्रोरल की साक्षी सेक्शुअल क्वेश्चन १६०८)

सम्बन्धियों का पारस्परिक निकट विवाह कुल वृद्धि के लिए क्यों घातक होता है ?

डार्विन ने भिन्न भिन्न प्रकार के सहस्रों पौधों का बोए जाने के समय से लेकर पूर्णतया विकसित हो जाने के समय तक निरीक्षण किया जिनमें से कुछ बीज बोकर और कुछ कलम चढ़ाकर उत्पन्न किये गये थे। इस प्रक्रिया में उन्हें दोनों प्रकार के पौधों में बड़ी विचित्रता देख पड़ी। कलम द्वारा उद्भूत पौधे ऊंचाई तौल, हरियाली ही नहीं उनकी आयु भी अधिक पाई गई। इसी कारण आजकल कलम से पौधों को प्रमुखता दी जाती है।

जिन व्यक्तियों ने भिन्न भिन्न नस्ल के पशु उत्पन्न किये हैं और इस विषय पर पुस्तकें लिखी हैं उन्होंने बताया है कि अत्यधिक निकट वर्ती प्रजनन से परिणाम हानिकर निकलते हैं। सुअर और भेड़ पर इस प्रजनन का बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है। चार सींगों वाली बकरी पर किये गये परीक्षणों से स्पष्ट हुआ है कि निकटस्थ प्रजनन से हड्डियां और पुट्ठे कमजोर पड़ जाते हैं। पशु का बल वीर्य घट जाता है और दूध पिलाने की शक्ति क्षीण हो जाती है। ला कहता है कि निरन्तर एक ही बिछावन पर उत्पन्न होने वाले कुत्तों में कुछ

समय के पश्चात दुर्बलता और ह्रास के लक्षण दीख पड़ने लगते हैं। बाल छितरे हो जाते वा गिर पड़ते हैं, आकार छोटा हो जाता है। शरीर के अंग सिकुड़ जाते हैं और आंखें बैठ जाती है। घोड़ों की उत्पत्ति के विषय में रायल कमीशन की रिपोर्ट में वर्णित है कि एक ही नस्ल के प्रजनन से उत्पन्न घोड़ियों का लगभग ४० प्रतिशत भाग प्रति वर्ष बछेरा उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है। शैल्डन लिखते हैं कि निकट सम्बन्धियों के प्रजनन से जाति की शारीरिक और उत्पादक शक्ति क्षीण हो जाती है।

(वैस्टर मार्क कृत विवाह संक्षिप्त इतिहास ९९-१०१)

रक्त सम्बन्धियों के पारस्परिक विवाह वंश-वृद्धि के लिए प्रायः हानिकारक माने जाते हैं। शरीर का भोंडापन, अन्धापन, बहरापन, नपुंसकता, लकवा और पागलपन एक ही रक्त के पारस्परिक समागम के दुष्परिणाम समझे जाते हैं।

(जे० यफ० निशल्स कृत विवाह और वेश पुस्तक पृ० १६०)

आर्य और द्राविड़ भिन्न नहीं है

आर्य लोग पंजाब और गंगा की घाटियों में जाकर बस गये थे आर्येतर लोग दक्षिण की ओर चले गये। आर्य लोग गंगा की घाटी से चलकर कुछ दक्षिण की ओर आ गये और इसके पश्चात दोनों आपस में घुल मिल गये और दोनों ने एक ही संस्कृति का विकास किया इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण भारत तथा कथित द्राविड़ों की मूल भूत भाषाएं धातु और बनावट की दृष्टि से संस्कृत भाषा से भिन्न हैं तथापि वे अब अधिक संस्कृतमय बन रही हैं परन्तु दोनों वर्गों को भिन्न भिन्न नस्लों से उद्भूत मानना असंगत हैं। भाषा के भेद का नस्ल भेद से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। आर्य शब्द का अर्थ है 'उच्च' और 'द्राविड़' का अर्थ है "अन्त में दक्षिण की ओर जाने वाली टुकड़ी।"

(श्री दीवान बहादुर के० यस० रामास्वामी शास्त्री कृत रामायण का अध्ययन पृ० २४, २७)

॥ ओ३म् ॥

आर्य पर्वों की सूची

१९५७ .

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली आर्य समाजों की सूचना के लिये प्रति वर्ष स्वीकृत आर्य पर्वों की सूची प्रकाशित किया करती है। इस वर्ष की सूची निम्न प्रकार है :—

क्र०सं०	नाम पर्व	सौर तिथि	चन्द्र तिथि	अंग्रेजी दिनांक	दिन
१	मकर संक्रान्ति	१-१०-२०१३	पौष शुक्ल १३	१४-१-१९५७	सोमवार
२	बसन्त पंचमी	२३-१०-२०१३	माघ शुक्ल ५	५-२-५७	मंगलवार
३	सीताष्टमी	१०-११-२०१३	फाल्गुण कृष्ण ८	२३-२-५७	शुक्रवार
४	दयानन्द बोधोत्सव	१६-११-२०१३	,, ,, १३	२८-२-५७	बृहस्पतिवार
५	लेखराम वीर तृतीया	२०-११-२०१३	,, शुक्ल ३	४-३-५७	सोमवार
६	वसन्त नवसस्येष्टि (होली)	२-१२-२०१३	,, ,, १५	१५-३-५७	शुक्रवार
७ ८	नव सम्वत्सरोत्सव आर्यसमाज स्था०दि०	१५-१२-२०१३	चैत्र शु० १ सं० २०१४	१-४-५७	सोमवार
९	राम नवमी	२६-१-२०१४	चैत्र शुक्ल ९	८-४-५७	सोमवार
१०	हरि तृतीया (तीज)	१४-४-२०१४	श्रावण शुक्ल ३	२९-७-५७	सोमवार
११ १२	श्रावणी उपाकर्म सत्याग्रह बलि० दि०	२६-४-२०१४	श्रावण शुक्ल १५	१०-८-५७	शनिवार
१३	कृष्णाष्टमी	३-५-२०१४	भाद्रपद कृष्ण ८	१८-८-५७	रविवार
१४	विजय दशमी	१८-६-२०१४	आश्विन शुक्ल १०	३-१०-५७	बृहस्पतिवार
१५	दीपावली ऋषि निर्वाणोत्सव	६-७-२०१४	कार्तिक कृष्ण ३०	२२-१०-५७	बुधवार
१६	श्रद्धानन्द बलिदान दिवस	९-९-२०१४		२३-१२-५७	सोमवार

इन पर्वों को उत्साह पूर्वक ससमारोह मना कर इन्हें आर्य समाज के प्रचार और वैदिक धर्म के प्रसार का महान् साधन बनाना चाहिये।

रामगोपाल

सभा मंत्री

साहित्य समीक्षा

स्वर्ग में हड़ताल

लेखक श्री चतुरसेन जी गुप्त,
प्रकाशक—गुप्ता प्रेस, शामली (मुजफ्फरनगर)
पृष्ठ संख्या ४४, मूल्य ।=)

कहावत है कि जिसकी सन्तान नालायक बन जाये तो उसके पितर स्वर्ग में भी दुखी होते हैं और लायक सन्तान के माता पिता की आत्माएं स्वर्ग में अपने सुपुत्र के शुभ काय को देख कर मुदित होती हैं। श्री लाला चतुरसेन जी गुप्त जो पुराने आर्य समाजी हैं वर्तमान समय में विविध संस्थाओं के अनुयायियों को उन संस्थाओं के उद्देश्य के विरुद्ध कार्य करते देख विह्वल हो उठे हैं और उन्होंने उपरोक्त कहावत के अनुसार उन सस्थाओं के संस्थापकों की आत्माओं का सहारा लेकर अपने मन की व्यथा प्रस्तुत पुस्तक "स्वर्ग में हड़ताल" द्वारा प्रकट की है। प्रस्तुत पुस्तक का प्रारम्भ आर्य समाज के प्रसिद्ध स्व० नेता लाला देशबन्धु जी के स्वर्ग में निज परिचय के साथ आरम्भ होकर आर्य समाज और हिन्दू महासभा के नेता प्रो० रामसिंह जी को भाई परमानन्द जी का उत्तराधिकारी नियुक्त करके समाप्त की गई है।

लेखक की कल्पना-दौड़ ने स्वर्ग में महान् आत्माओं का सम्मेलन बुला कर उसमें उनके द्वारा अपने २ अनुयायियों की उनके उद्देश्य के प्रतिकूल चलने के लिये भर्त्सना की है। इस सम्मेलन में महर्षि दयानन्द, महात्मा बुद्ध, ईसा, महात्मा गांधी, राजाओं के प्रतिनिधि महाराज गंगासिंह जी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, सरदार पटेल तथा भाई परमानन्द आदि की आत्माओं ने भाग लिया है और लेखक ने उन आत्माओं के विचारों का जो चित्रण किया है वह बहुत सफल रहा है। लेखक के हृदय की कसक उनकी लेखनी से फूट पड़ी है। लेखक ने महात्मा गान्धी की आत्मा के विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए वर्तमान सरकार से गोवध बन्द न करने की शिकायत की तो महात्मा ईसा के अनुयायियों से शिकायत है कि उन्होंने शान्ति के प्रचारक के उपदेश के विरुद्ध संसार को भयंकर लड़ाइयों से तृसित किया है और आज भी तीसरे महायुद्ध के मुंह पर संसार को लाकर खड़ा कर दिया। महात्मा बुद्ध के अनुयायी आज अहिंसा को छोड़ कर हिंसक बन गये हैं और नाना प्रकार से मांस भक्षण में बाजी मार ले गये हैं। इसी प्रकर राजाओं के प्रतिनिधि ने अपने वंशजों के त्याग की सराहना की है और जनता उनके साथ न्याय करे इसकी आशा की है। सरदार पटेल ने राजाओं के त्याग की सराहना करते हुए उनके साथ अन्याय न करने का अनुरोध किया है। भाई परमानन्द ने कांग्रेस की तुष्टिकरण की भर्त्सना करते हुए यह सन्तोष प्रकट किया है कि वे आज भी भूलोक में कांग्रेस को तुष्टिकरण की नीति का विरोध करने के लिये प्रो० रामसिंह को छोड़ गये हैं। महर्षि दयानन्द की आत्मा को दुःख है कि उनके अनुयायियों ने राजनीति से मुख मोड़ कर आज संसार को वर्तमान स्थिति में डाल दिया है अन्यथा आज संसार की हालत विशेष कर भारतवर्ष के धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में जो भ्रष्टाचार प्रविष्ट हो गया है वह न होता और भूतल पर स्वर्ग उतर आता।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक मनोरंजक, विचारणीय विचारधारा से परिपूर्ण और समस्त संस्थाओं के उत्तराधिकारियों के लिये अपने २ कर्तव्य की ओर विचार करने का अवसर प्रदान कराने वाली है। लेखक और प्रकाशक दोनों ही इस प्रकाशन के लिये बधाई के पात्र हैं।

—निरंजनलाल गौतम

महिला-जगत

महिलाओं की आजादी रोम साम्राज्य को कितनी मंहगी पड़ी ?

[लेखक—इतिहास का एक विद्यार्थी]

युरोप को रोमन सभ्यता की अनेक देन प्राप्त हुई है उनमें से 'एक पत्नीवाद' की देन स्त्री जाति के सुधार की सबसे बड़ी देन समझी जाती है। प्राचीन रोम के निवासियों में विवाह की पवित्रता का बहुत अधिक महत्त्व था। रोमन सभ्यता के प्रारम्भ के ५२० वर्षों तक तलाक जैसी चीज रोम में न थी। वैवाहिक पवित्रता और मर्यादा के संरक्षण के लिए व्यवहार के नियम बड़े कठोर प्रचलित थे। राजसभा के एक सभासद् को उसकी अश्लीलता के लिए इसलिए दंडित किया गया था कि उसने अपनी लड़कियों के सामने अपनी पत्नी का चुम्बन कर लिया था। यद्यपि आजकल यह युरोप का आम रिवाज है। वे लोग पत्नी को अपनी अर्द्धाङ्गिनी और जीवन की सहचरी समझते थे। रोमन परिवार में माता को सर्वोच्च स्थान मिलता था। पत्नियों के साथ उत्तम व्यवहार होता था। पत्नियां पतिव्रता होती थीं। मक्रोनिया नामक एक कुलीन स्त्री ने अपने हृदय में इसलिए खंजर भोंक लिया था कि वह सम्राट टिबेरिअस के आलिंगन में जाने से बच सके। सम्राट आगस्टस की पुत्री और पौत्री चर्खे से सूत निकाला करतीं और उसकी पत्नी-रोम की साम्राज्ञी-अपने हाथ से उस सूत का कपड़ा बुनती थी। रोम की पत्नियां अपने गृह प्रबन्ध विशेषतः चर्खे से सूत कातने में बहुत प्रसिद्ध थीं, यहां तक कि उनके सूत कातने की खूबसूरती का वर्णन मरने के बाद उनकी कब्रों पर सुन्दर पत्थरों पर खोद दिया जाता था। व्यभिचार के दोष पर स्त्री पुरुष जिन्दा जला दिये जाते थे। कुटनियों और दलालों को बीन २ कर समाप्त कर दिया जाता था। विवाहित स्त्री पुरुषों के अलावा किसी को एक दूसरे से भोग का अधिकार न था। वेश्या वृत्ति की आज्ञा न थी। माता पिता सन्तान को और सन्तान माता पिता को प्यार करते और आदर की दृष्टि से देखते थे। रोम में कल्वा का मन्दिर कुछ स्त्रियों की स्मृति रक्षार्थ बना हुआ था। कहा जाता है कि उन स्त्रियों ने किसी राष्ट्रीय आपत्ति के समय अपने सिरों के लम्बे २ बाल सैनिकों के धनुषों की डोरियां बनाने के लिए कटवा डाले थे। एक और स्त्री की स्मृति में रोम में एक मन्दिर बना हुआ था। उस स्त्री की मातृ भक्ति अनुकरणीय थी। उसकी माता को किसी कारण भूखा रख कर मार डालने की सजा मिली थी। पुत्री ने किसी तरह अधिकारियों से अपनी माता से जेल में मिलने की आज्ञा प्राप्त की। खाने पीने की कोई सामग्री उसके पास न हो इस उद्देश्य से उसकी तलाशी भी लेली गई। मां की भेंट से जब उसका नियत समय समाप्त हो गया तो सन्तरी उसे बुलाने के लिए बैरक के भीतर पहुंचा। वहां जाकर सहसा उसने देखा कि लड़की अपने स्तनों से भूखी मां को दूध पिला रही है। रोम के नारी इतिहास की ये झलकियां आर्य सभ्यता की निशानियां हैं जो आर्य जन रोम आदि में जाते और बसते समय अपने साथ ले गये थे।

स्त्रियों को आजादी देने का युग आरम्भ हुआ लोगों की पाशविक वृत्तियां भड़कीं। ट्यूनिक लड़ाइयों के बाद पराजित देशों की स्त्रियों की दासियों के रूप में बाढ़ आ जाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। सदाचार उठ सा गया। विवाह

की पवित्रता और मर्य्यादा लगभग जाती रही। तलाक की व्यवस्था हुई। पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त हुआ। थोड़े ही दिनों में तलाक साधारण वस्तु बन गई। रोम में एक स्त्री ने ५ वर्ष में ८ विवाह किये। रोम में एक स्त्री थी जिसने २० पतियों को तलाक देकर २१ वीं बार एक आदमी से विवाह किया किन्तु ये २१ वें पतिदेव भी इसके पूर्व २२ विवाह कर चुके थे और उपरोक्त श्रीमती जी उनकी २३ वीं पत्नी थीं। रोम का घर २ विषय विलास की तस्वीरों और सामग्री से भर गया। फ्लोरा नामक एक खेल शुरू हुआ जिसमें रंग भूमि के ऊपर नग्न स्त्रियां हावभाव दिखाकर केलि करती थी। शाही मौजों में स्त्री-पुरुष नाम-मात्र वस्त्र धारण करके शामिल होते थे और बिना संकोच एक दूसरे की स्त्रियों के साथ नाचते गाते तथा विविध उन्मत्त क्रीड़ाएं करते थे। अन्त में सीजर के शासन काल में तो सतीत्व, सदाचरण, पवित्रता और पति पत्नी परायणता सर्वथा मिट गई, और मिट गया रोम के महा महिम साम्राज्य का वर्चस्व।

स्त्रियों की आज़ादी उसी सीमा तक ठीक है उनको अधिकार दिया जाना वहां तक उचित है जहां तक उनके जीवन का दृष्टिकोण त्याग और सदाचार पूर्ण रह सके और वे ज्ञान में वा अन-ज्ञान में स्वार्थी पुरुष समाज की कामुकता का शिकार न बन सकें।

निष्पाप मन

[श्री कविरत्न पण्डित हरिशंकर जी शर्मा]

पर, पाप न आवे, हे प्रभु मेरे मन में॥

सम्पति का कोष कमाऊँ, चाहे सर्वस्व गंवाऊँ।
सुख हो या दुख उठाऊँ, जुग जीऊँ, अभी मर जाऊँ॥
नगरी का नागर बनूँ, बसूँ या बन में—
पर, पाप न आवे, हे प्रभु, मेरे मन में॥

परिवार भले ही छोड़े, प्रिय पत्नी नाता तोड़े,
मुँह सन्तति क्यों न मोड़े, शासन सब तीत निचोड़े,
कष्टों का कोप रहे, कितना ही तन में—
पर, पाप न आवे, हे प्रभु, मेरे मन में॥

दुखियों के दुःख निवारूँ, पतितों पर प्रेम प्रसारूँ,
बल सदा सत्य का धारूँ, बन वीर न हिम्मत हारूँ,
हो जरा जीर्ण तन, या उमंग यौवन में—
पर, पाप न आवे, हे प्रभु मेरे मन में॥

अन्याय अनीति मिटाऊँ, सेवा सन्मार्ग सुझाऊँ,
सद्भाव सुधा बरसाऊँ, समता सुनीति सरसाऊँ
यश हो, या अपयश मिले, मुझे जीवन में—
पर, पाप न आवे, हे प्रभु, मेरे मन॥

बच्चे के प्रति प्रेम से मानसिक लाभ

[लेखक—प्रो० श्रीलाल जी राय शुक्ल एम० ए० बी० टी०]

बालक किसी भी व्यक्ति के बस में हो जाते हैं, जो उन्हें प्यार करता है। जो लोग जितना ही बालकों के बारे में सोचते हैं और उन्हें किसी न किसी प्रकार प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं वे अपने आपको उतना ही सुखी और आरोग्यवान् बनाते हैं। ऐसे लोगों को अकारण चिन्ता, भय और हृदय के रोग नहीं होते। लेखक के उपचार में जितने ही हृदय के रोगी आये उन सभी के जीवन में बच्चोंके प्रति प्रेम में कमी पाई गई। इनमें से कितनों ने तो अपने बच्चों को कभी गोदी में भी न लिया था। जो लोग बच्चों से प्यार करने लगे और सदा उनको अपने साथ रखने लगे उनके हृदय का रोग जाता रहा।

जब रोगी को अकारण चिन्ता और मानसिक अशान्ति त्रास देती है तब छोटे बच्चों के साथ बातचीत करने, उनके साथ खेलने, उन्हें क ख ग सिखाने और उनका चिन्तन करने से यह सरलता से नष्ट हो जाती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब एक छोटी स्त्री बालिका को मार्ग में खेलते हुये देखा तो श्रद्धा से उनका मस्तक उसके सामने झुक गया कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि 'यह मातृ शक्ति है।' उन्होंने उसमें एक पवित्र शक्ति के दर्शन किये।

ईसा के पास जब छोटे २ बच्चे दौड़कर आ रहे थे तो उनके शिष्य उन्हें रोकने लगे। ईसा ने कहा 'इन बच्चों को मेरे पास आने से मत रोको क्योंकि स्वर्ग का राज्य वास्तव में इन्हीं का है और मैं सचमुच तुमसे यही कहता हूं कि जब तक तुम भी अपने हृदय को बच्चे के हृदय के समान निष्पाप और निष्कपट न बनाओगे तब तक परम-सुख प्राप्त न कर सकोगे।

संसार के प्रायः सभी महान पुरुष बच्चों से प्यार करते चले आये हैं। बालक को प्रेम की दृष्टि से देखना न केवल बालक के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें सहायक होता है वरन्वह परमात्मा के प्रति अपनी आस्तिकता प्रकट करने का यह निश्चित रूप है, जिसने समस्त विश्व को रचा है। सच्चे शिक्षक बालक से न केवल प्रेम करते हैं वह उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से भी देखते हैं। वे बालकों की तोतली वाणी में देव वाणी की ध्वनि पाते हैं। जो व्यक्ति बालक की साधारण सी बात में जितना रस लेता है वह अपने हृदय की शान्ति को उतना ही अधिक स्थिर बनाता है। छोटे २ बच्चों का लालन-पालन और उनका शिक्षण स्वास्थ्य की दृष्टि से जितना लाभप्रद है उतना लाभप्रद दूसरा कोई काम नहीं है।

वास्तव में बालक के साथ स्नेह करने से अपनी अन्तरात्मा का उनके साथ तादात्म्य हो जाता है। फिर बालक जैसे २ अपने जीवन में उन्नति करता जाता है वैसे २ हम अपने आप ही उन्नत होते जाते हैं।

इस प्रसंग में एक अंग्रेजी साहित्यकार का अनुभव उल्लेखनीय है। इस साहित्यकार को सिगरेट पीने की बड़ी आदत थी। वह इसे छोड़ना चाहता था परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी छोड़ न पाता था। जब कभी वह सिगरेट पीना बन्द करता तो उसका मन निरुत्साहित हो जाया करता था। एक बार उसके मित्र का लड़का जिसे सिगरेट पीने की आदत थी मित्र के कहीं बाहर जाने पर उसके पास रहने लगा। इस लड़के की सिगरेट पीने की आदत को उसने जान लिया। लड़का किशोरावस्था में था। इस लड़के के प्रति इस व्यक्ति को भारी सहानुभूति हुई। उसके मन में विचार आया कि यदि यह लड़का अपनी इस आदत को इसी समय न छोड़ पाया तो वह एक जटिल आदत का दास बन जायगा और फिर मेरी तरह आत्म-ग्लानि का कष्ट भोगेगा। फिर इस व्यक्ति ने उस बालक को अपना प्रेम दिखाते हुए और अपनी मानसिक जटिलता को कहते हुये सिगरेट पीने की आदत को छोड़ने की सलाह दी। लड़के को धीरे धीरे सिगरेट पीना छोड़ने का मार्ग बताया। उसे किसी रचनात्मक काम में सहानुभूति पूर्वक लगाया। धीरे धीरे ३-४ महीने में उस बालक ने सिगरेट पीना छोड़ दिया। मित्र के आने पर वह अपने घर चला गया परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि अब जब इस व्यक्ति ने अपनी सिगरेट पीने की आदत छोड़ने का संकल्प किया तब वह अपने संकल्प को पूरा करने में बिना किसी कठिनाई के सफल हो गया। इस समय तक उसकी इच्छा शक्ति इतनी बलवती हो गई थी कि वह जटिल आदत उसे अपनी कैद में न रख सकी।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि बालक को किसी प्रकार की सहानुभूति पूर्वक सुधार करने के मन से हम स्वयं ही अपने आप सुधर जाते हैं परन्तु इस प्रकार का सुधार कार्य अभिमान पूर्वक न होना चाहिए। दूसरों में देवत्व देखना ही अपने आपमें देवत्व भाव का जागरण करना है दूसरे में शैतान को देखना अपने में शैतान को बली बनाना है।

बच्चा निरभिमान होता है। अपने अभिमान को खोने का सर्वोत्तम उपाय बच्चों के विषय में चिन्तन करना और उनके साथ कुछ खेलना है इंग्लैंड का प्रसिद्ध राजा अलफ्रेड प्रत्येक रविवार को गुप्त रूप से अपनी राजधानी से ५० मील दूर जाकर एक साधारण घर का अतिथि बन जाता था और वहां के छोटे २ बालकों के साथ ऐसे खेलने लगता था मानो वह भी बालक है। कभी २ वह इन बच्चों को पीठ पर रखकर घुटने और हाथों के बल चलता और वे उस पर घोड़े जैसे सवारी करते थे। इससे उनके मन में इतनी प्रसन्नता हो जाती थी कि वह सप्ताह भर अपने राज्य भार को सरलता से संभाल लेता था।

वास्तव में बच्चा शक्ति का केन्द्र है। जो बच्चे की सेवा इस भाव से करता है कि उससे उसे शान्ति और आनन्द मिले उसे मानसिक शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

❀

गोरक्षा आन्दोलन

बौद्ध साहित्य में गाय का स्थान

[लेखक—श्री सुमन वात्स्यायन]

अभी कुछ दिन हुये मेरे एक मित्र ने बात चीत के सिलसिले में कहा बौद्ध धर्म यद्यपि भारत में पैदा हुआ और यहीं फला फूला और और यहीं से जाकर वह संसार के एक कौने से दूसरे कौने तक फैला फिर भी उसमें बहुत सी बातें सभ्यता और सस्कृति के प्रतिकूल मालूम पड़ती हैं। उनकी बहुत सी बातों में से मुख्य बात थी गो-मांस भक्षण की। इस छोटे से निबन्ध में मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि बौद्ध साहित्य में विशेष रूप से बुद्ध की दृष्टि में गाय का क्या स्थान था ?

भगवान बुद्ध करुणा के अवतार थे। उनके हृदय में संसार के समस्त प्राणियों के लिये समान दया थी। वे किसी भी प्राणी के कष्ट को देखकर चुप नहीं बैठ सकते थे। इनका स्नेह सीमाबद्ध नहीं था। फिर गाय जैसे उपयोगी और मनुष्य मात्र को बिना किसी भेद भाव के एक समान सुख देने वाले प्राणी की वो कैसे उपेक्षा कर सकते थे। भगवान बुद्ध की इस सहृदयता को देखकर महाकवि जयदेव ने गाया :—

निन्दसि यज्ञ विधेरहह श्रुति जातम्
सदय हृदय दर्शितय शुधातम्
केशव धृतबुद्ध शरीर जय जगदीश हरे।

भगवान् बुद्ध ने यज्ञ की हिंसा की बड़ी निन्दा की। वे ४५ वर्ष तक एक एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहे और लोगों को अन्यान्य बातों के साथ साथ गो हत्या के विरुद्ध भी उपदेश देते रहे। उनके समकालीन भगवान महावीर भी अहिंसा के प्रबल पक्षपाती थे इन दोनों प्रचारकों को अपने उद्देश्य की सिद्धि में पूर्ण सफलता मिली उन्होंने आज की तरह गो रक्षा के लिये न कहीं साम्प्रदायिक दंगे करवाये और न गौ रक्षा को धार्मिक रूप ही दिया बल्कि उन्होंने जनता को गाय की और गो वंश की उपयोगिता बतला कर गोवध न करने की शिक्षा दी। कुछ लोगों ने उनका प्रबल विरोध किया, किन्तु उन्होंने धैर्य पूर्वक सब सहन करने में ही अपने उद्देश्य की सफलता देखी।

आज प्रत्येक हिन्दू गौ सेवा एव गौ रक्षा में अपना गौरव समझता है, किन्तु भगवान बुद्ध की गौ रक्षा की भावना से लोग बहुत कम परिचित हैं। भगवान बुद्ध ने एक जगह कहा है

माता यथा नियपुत्त' आयुसा एक पुत्तमनुरक्खे।
एव म्पि स्व्व भूतेसु मानसं भावये अपरिमाण'॥

माता जिस प्रकार अपने इकलौते बेटे के प्रति स्नेह रखती है। उसी प्रकार सभी प्राणियों में अपरिमित प्रेम रखना चाहिये। जब दया की यही प्रवृति धर्मराज अशोक के विचारों में पूर्णता को प्राप्त हुई। भगवान बुद्ध गाय की उपयोगिता को सर्वोपरि स्थान देते थे। वे गाय की निर्दोषता पर मुग्ध थे। इसलिये उन्होंने

कहा है।

न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केनचि
गावो एलक समाना सोरता कुम्भदूहना ॥

गायें न पैर से, न सींग से न किसी अंग से ही मारती हैं। भेड़ के समान प्रिय और घड़े भर दूध देने वाली है। मनुष्य को अनेक वस्तुओं पर निर्भर रहना पड़ता है, किन्तु कुछ वस्तुओं की उपयोगिता इतनी अधिक है कि उनके बिना हमारा जीवन यापन कठिन हो जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में सम्भव है कि हम अपनी आवश्यकता की पूर्ति भिन्न तरीकों से कर लें, पर वह तरीका सर्व व्यापी नहीं हो सकता। भारत सदा से कृषि प्रधान देश रहा है। खेती के लिये यहां प्राचीन काल से आज तक बैल का प्रयोग होता रहा है। बचपन में हमें अपने दूध से और बड़े होने पर उसका पुत्र बैल अन्न उपजा कर हमारा भरण पोषण करता है। भगवान बुद्ध जैसे दयालु पुरुष गाय की उपयोगिता कैसे भूल सकते हैं उन्होंने गाय को माता पिता के समान उपकारी बतलाया।

यथा माता पिता माता अञ्जे वापि च जातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसधा॥

जैसे माता, पिता, भाई और दूसरे कुटुम्ब परिवार के लोग हैं, वैसे ही गायें भी हमारी परम मित्र हितकारी हैं जिससे अर्थात जिनके दूध से दवा बनती है।

ऊपर गाथा में स्पष्ट हो गया होगा कि गाय के प्रति भगवान बुद्ध के हृदय में कितनी करुणा थी। वे गाय को सुख का मूल स्रोत समझते थे। इसीलिये तो उन्होंने कहा है।

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थ वसं जत्वा नास्सु गावो हनिसुते॥

गाय इतनी चीजों को देने वाली है, अन्न बल वर्ण (सौन्दर्य) तथा सुख। इन बातों को जानकर ही वे लोग गाय को नहीं मारते थे।

सरल और हृदयस्पर्शी भाषा में किसी वस्तु की उपयोगिता बताकर दूसरों की नजर में भी उस वस्तु के प्रति श्रद्धा और आदर पैदा करना बुद्ध का काम था। बुद्ध किसी पर अपना विचार बल पूर्वक लादना पसन्द नहीं करते थे क्योंकि बल पूर्वक मनवाने का अर्थ है परस्पर द्वेष पैदा करना। किन्तु बुद्ध तो कहते थे वैर से कहीं भी वैर शान्त नहीं हो सकता। मित्रता से ही वैर मिट सकता है।

गाय के प्रति भगवान बुद्ध की यह भावना देख उनके अनुयायियों में भी गाय की बड़ी कदर रही बर्मा में विशेष प्रचलित पाली भाषा की एक छोटी सी पुस्तक है 'लोक नीति' इसमें लिखा है।

ये च खादन्ति गोमसं, मातुमंसं व खादये।
मतेसु तेसु गिज्झानं ददे सोते व वाहये॥

जो गाय के मांस को खाते हैं वे अपनी माता के मांस को खायें; गाय के मर जाने पर गृद्धों को दे दे या नदी में बहा दे। आगे चल कर इसी पुस्तक में कहा है।

गोणाहि सब्ब गिहीनं पो सका भोग दायका।
तस्मा हि माता पितु व मानये सक्करेय्य च॥

बैल सब गृहस्थों के पोषण और भोग दायक है। इसीलिए उनका माता पिता की तरह आदर सत्कार करे।

मालूम होता है बुद्ध के गौ प्रेम का सबसे अधिक असर बर्मा में पड़ा। जबतक बर्मा स्वतंत्र था तबतक वहां यह कानून था कि गौ हत्या करने वाले को प्राण दंड मिलेगा और इस नियम का सख्ती से पालन होता था।

अन्त में बुद्ध के इस वचन के साथ में यह लेख समाप्त करता हूं कि 'एवमेसो अनुधम्मो पोराणो विञ्ञु गरहितो।'

अर्थात यह गौ हत्या प्राचीन विद्वानों द्वारा निन्दित कर्म है। सभी प्राणी सुखी होवें।

(धर्म-दूत)

❀

ईसाई प्रचार निरोध आन्दोलन

इनके विचार जानिये

(१)

ईसाई प्रचार आपत्तिजनक क्यों ?

यह सच है कि ईसा मसीह के चेले भिन्न २ देशों के निवासियों को ईसाई धर्म की श्रेष्ठता की शिक्षा दिया करते थे। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि ये चेले उन देशों में शासक न थे जहां वे उपदेश दिया करते थे। यदि ये मिशनरी उन देशों में जो अंग्रेजों द्वारा विजित न थे, जैसे टर्की, फारस इत्यादि जो इंगलैण्ड के अधिक समीप हैं—उपदेश देते और किताबें बांटते तो निश्चय ही बड़े सम्माननीय व्यक्ति और ईसाई धर्म के संस्थापक के पद चिन्हों का अनुसरण करने वाले उत्साही कार्यकर्ता समझे जाते। बंगाल में जहाँ अंग्रेज सर्वेसर्वा हैं, जहां अंग्रेजों का केवल नाम ही लोगों को भयभीत करनेके लिए पर्याप्त है वहां के निर्धन, भीरु और विनम्र निवासियों के अधिकारों और धर्म में हस्तक्षेप परमात्मा और जनता की दृष्टि में युक्ति युक्त कार्य नहीं समझा जा सकता है। ईसाई मिशन ऐसा मिशनरी काम न करने दें जो भारतीय धर्मों के अपमान और दुरुपयोग पूर्वक एक नये धर्म को जन्म और दीक्षित व्यक्तियों को साँसारिक प्रलोभन देते हुए किया जा रहा है।

—राजा राम मोहनराय

(२)

राष्ट्र विरोधी सेना की भेंट

१८५७ के भारती स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम में एक जर्मन मिशन ने जो कोल जाति में काम कर रहा था १० हजार ईसाई और एक दूसरे अमेरिकन मिशन ने जो ब्रह्मा में काम कर रहा था विद्रोहियों से लड़ने के लिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ३ हजार ईसाई पेश किये थे। कम्पनी ने इस सहायता को अंगीकार न किया। मुख्यतय इसलिये कि विद्रोह का उद्भव इस विश्वास में हुआ था कि अंग्रेज लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों को ईसाई बनाना चाहते हैं।

(३)

ईसाई बनने वालों को सांसारिक प्रलोभन दिये जाते हैं

जब कोई आदमी हमारे पास बपतिस्मा लेने आता है तो पहला प्रश्न हम अपने से करते हैं कि यह आदमी क्या चाहता है ? जिस क्षण कोई आदमी ईसाई बनाया जाता है उसी क्षण उसके सामने धन रख दिया जाता है।

—भारत में एक मिशनरी तथा सालवेशन-
मिशन का कार्यकर्ता

(४)

भ्रष्ट ईसाई प्रचार से स्वयं ईसाई मिशनरी तंग क्यों हैं ?

यह सब घूसखोरी है और मुझे अनुभव होता है कि मैं खरीद लिया गया हूं। तो भी मैं अपने हाथों से काम करने के लिये तैयार हूँ।

—कोरिया का एक बिशप।

(५)

क्या ईसाई बनाना परोपकार है ?

'वास्तविक मिशनरी कार्य तो अभी आरम्भ ही नहीं हुआ है। जो कुछ हमने अब तक किया है वह तो केवल परोपकार ही है। यह ठीक है कि मिशनरी काम अपने पूर्ण आदर्श पर ही परोपकार कहा जा सकता है नीच आदर्शों पर यह परोपकार भी नहीं कहा जा सकता।

—एक प्रसिद्ध विशप।

(६)

ईसाइयत साम्प्रदायिकता को बढ़ा रही है

ईसाइयत हिन्दू समाज को विभक्त करके एक बड़ी समस्या को जन्म दे रही है। सन् १६२८ में जब डा० मोट भारत में थे एक बातचीत के दौरान में यह चर्चा छिड़ने पर कि मैंने किस प्रकार ईसाई धर्म ग्रहण किया और कौन सी वस्तु मुझ पर ज्यादा बोझ डाल रही है, मैंने कहा ईसा और ईसाइयत के नाम में इस नई श्रेणी की उत्पत्ति ही मेरे मन पर अधिक बोझ डाल रही है। यह श्रेणी भारत वर्ष में पहले से व्याप्त साम्प्रदायिकता के विष को और भी बढ़ायेगी और हृदय से ईसा को अपना पथ प्रदर्शक मानने वालों के रास्ते में रोड़ा अटकायेगी। वस्तुतः यह श्रेणी हिन्दुओं के सांस्कृतिक और धार्मिक विकास के लिये घातक है।

—श्री एम० पारीख।

(७)

डा० अम्बेडकर ईसाई क्यों न बने ?

मैं दलितों को ईसाई बन जाने की सलाह नहीं देता। इसका कारण यह है कि ईसाई धर्म में दीक्षित हुए दलितों की सामाजिक अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। हरिजन तथा ईसाई हरिजन उच्च वर्ण वालों की दृष्टि में समान होते हैं। मेग ईसाई, पार ईसाई और ब्राह्मण ईसाई आपस में रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते। शिक्षित ईसाइयों को केवल अपनी फिक्र है और वे अपने सुखों को ही देखते हैं। गांव के ईसाई उच्च वर्णों की दया पर छोड़ दिये जाते हैं।

—१७ दिसम्बर १६३४ में अहमदाबाद में दिया भाषण।

(८)

ईसाइयत साम्राज्यवाद के प्रसार का अस्त्र कैसे बनती है ?

"सब से अन्तिम कार्य गिनती के लिहाज से सबसे अन्तिम पर महत्व के लिहाज से अन्तिम नहीं—हमारे व्यापार के लिए अन्य देशों का द्वार खोलना है। इस कार्य को स्टेलनी अच्छी तरह समझता था। कांगो (अफ्रीका) की घाटी से लौटने पर स्टेलनी ने जो कार्य किये उनमें सब से पहला यह था कि उसने मैंनचेस्टर के व्यापारियों को एकत्र करके उन्हें बताया कि कांगों प्रदेश के लाखों निवासी कमीज कुर्तों और कपड़ों के उपयोग से एक दम अपरिचित हैं। इसके लिए मैंचेस्टर वालों को सिर्फ यह करना होगा कि वे वहां ऐसे पादरियों को भेजें जिनका काम वहां के निवासियों को यह समझाना होगा कि वे सभ्य वस्त्रों का प्रयोग करें।" फिर देखना मैनचेस्टर के सूती कपड़ों की कितनी मांग बढ़ती है।

—एक ईसाई पादरी के व्याख्यान का अंश।

देश विदेश प्रचार

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी का प्रचार कार्य, एक बड़ा उत्साह बर्धक समाचार

दारासलेम (पूर्वीय अफ्रीका)

श्री स्वामी जी २८ नवम्बर को दारासलेम पहुंचे। उस दिन स्वामी जी के आदेशानुसार सार्वजनिक भाषण न रक्खा गया केवल आर्य समाज के सदस्यों के साथ बात चीत रखी गई। उस दिन प्रायः सभी सदस्य उपस्थित हुए। श्री स्वामी जी ने उनके समक्ष निम्न लिखित ५ परामर्श रक्खे।

(१) प्रत्येक सदस्य सोते समय रात्रि को सोचे कि क्या मैंने आज कोई ऐसा काम किया है जिससे आर्य समाज का यश दूषित हो जाय?

(२) प्रत्येक सदस्य साप्ताहिक सत्संग में सपरिवार सम्मिलित हो।

(३) आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपने घर पर कमसे कम प्रतिदिन सम्मिलित पारिवारिक उपासना करे।

(४) आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपने मासिक अथवा वार्षिक चन्दे को आर्य समाज में जाकर आर्य समाज के सम्बद्ध अधिकारी को स्वयं देवे।

(५) आर्यसमाज के प्रधान और मन्त्री साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित होने के लिये कम से कम सब सदस्यों से एक मिनट पूर्व ही आर्य समाज मन्दिर में आ जायें और यह देखें कि अमुक सदस्य क्यों नहीं आया है?

२ घन्टे तक विचार होता रहा। सदस्यों ने प्रथम परामर्श के पालन में कठिनाई तो बताई परन्तु उसको पालन करने का पूरा पूरा यत्न करने का आश्वासन दिया। शेष चार परामर्शों को तो तत्काल कार्य में परिणत करने का निश्चय कर दिया गया।

आर्य समाज की स्थापना १६११ में हुई और १६२६ में मन्दिर निर्मित हुआ। इस समय इसके ६३ सदस्य हैं। आर्य समाज का भवन बड़ा भव्य और विशाल है। इस समय उसका मूल्य १२ हजार शिलिंग बताया जाता है। ४४ हजार वर्ग फीट का एक प्लाट भी आर्य समाज के पास है। इस प्लाट के आधे भाग पर एक 'आनन्द भवन' नाम का मकान बना हुआ है जिसका किराया प्रति मास २१०० शिलिंग प्राप्त होता है।

आर्यसमाज दार इसलाम की एक आर्य सेवा समिति भी है। इसका भी एक भव्य भवन है। इस भवन में व्यायाम शाला चलती है। यह भवन एक लाख शिलिंग की कीमत का है।

आर्य समाज दारा सलेम एक आर्य्य कन्या विद्यालय भी चला रहा है। इसमें १३०० लड़कियां पढ़ती हैं। सीनियर कैम्ब्रिज तक की पढ़ाई है। ४० अध्यापिकाएं हैं। प्रति मास ३५

हजार शिलिंग अध्यापिकाओं के वेतन पर व्यय होता है। इस विद्यालय की स्थापना १६२९ में हुई थी। १६ वर्ष तक विद्यालय ने निःशुल्क शिक्षा दी किन्तु इस समय शुल्क लिया जाता है। इस समस्त सम्पत्ति की रजिस्ट्री आय प्रतिनिधि सभा ईस्ट अफ्रीका के नाम है।

आर्य समाज तथा विद्यालय का प्रबन्ध योग्य और प्रबन्धक आर्यों के हाथ में है।

श्री स्वामी जी ज़ंजीबार चले गये हैं।

—द्वारा सलेम मन्त्री आर्य समाज

लंदन समाचार

लन्दन, श्रीयुत ब्र० धीरेन्द्रजी शील बड़े उत्साह से प्रचार कार्य करते हैं। गत दशहरा और दिवाली के उत्सव हिन्दू एसोसियेशन आव युरोप के साथ मिलकर मनाए गये। आर्य्य समाज की ओर से श्री धीरेन्द्र जी शील का भाषण हुआ साथ ही एसोसियेशन की ओर से भारतीय संगीत तथा जलपान का आयोजन किया गया।

१८-११-५६ को कैम्ब्रिज में Life and Death पर तथा लन्दन में शान्ति वादी संस्था P. P. U. में गांधी तथा भारत के हिंसावादी दर्शन पर भाषण हुये। १० नवम्बर को West field College लन्दन विश्व विद्यालय में 'भारतीय जन दर्शन' पर व्याख्यान हुआ। यह कालेज केवल लड़कियों का है और अपने ढंग का एक ही कालेज है। ५ नवम्बर को 'बुद्ध विहार में' भाषण हुआ। आर्य पत्रिका प्रति दो मास में एक बार निकलती है। शरत कालीन व्याख्यान मालाओं की योजना हो रही है। किराये पर हाल निश्चित किये जा रहे हैं।

ब्रिटिश गायना

श्री ब्र० उषर्बुध जी ब्रिटिश गायना में आर्य समाज का कार्य कर रहे हैं। प्रचार कार्य के साथ साथ वे ब्रिटिश गायना की आर्य समाज का इतिहास भी तय्यार कर रहे हैं। अमेरिकन आर्य लीग ने ब्रिटिश गायना में वैदिक मिशन का अध्यक्ष उन्हें नियत किया है। वे आर्य समाज को प्रचार और संगठन की दृष्टि से दृढ़ बनाने के यत्न में लगे हैं। २८-१०-५६ को श्रीयुत पं० रामजी लाल शर्मा प्रचारक द्वारा श्री दयाराम जी (टायम्फ विलेज निवासी) का कुमारी राजमती के साथ वैदिक विवाह हुआ। वर की आयु २४ वर्ष की और कन्या की १६ वर्ष है। टायम्फ विलेज में आर्य समाज मन्दिर है।

फिज़ी

गत नवम्बर मास के अन्त में फिजी में आर्य्य समाज की स्वर्ण जयन्ती समारोह मनाई गई।

इस अवसर पर फिजी के गवर्नर श्रीयुत सर रोनाल्ड गार्वे के० सी० ऐम० जी के द्वारा सामाबूला (सूवा) में डी० ए० वी० कालेज की आधार शिला रखी गई। श्रीयुत पं० श्रीकृष्ण शर्मा आर्य मिशनरी ने जिन्हें स्वर्ण जयन्ती महोत्सव की अपूर्व सफलता का बड़ा श्रेय प्राप्त है निम्नलिखित वैदिक प्रार्थना गवर्नर महोदय के द्वारा महारानी एलिजाबेथ की सेवा में भिजवाई जिसके लिए महारानी महोदया ने सेक्रेटरी आव् स्टेट्स फार दी कोलोनीज के द्वारा आभार प्रदर्शन किया:—

'May ever Brahmans be born in the world who are masters of the Vedas and know God and are Spiritual lustre and such warriors be ever born as are proficient of the military sciece and Valorous and fearless to maintain peace and

offer protection at all times.

May this world be blessed with Continued peace and prosperity abundant and timely rain; plenty of fruits and grains and most useful medicinal herbs."

आर्य प्रतिनिधि सभा फिजी ने डी० ए० वी० कालेज के भवन तथा संचालन के लिए १ लाख पौंड एकत्र करने का निश्चय करके संग्रह करने की योजना बनाई है। कन्याओं के लिए कालेज के पास ही पृथक् कालेज की भी व्यवस्था की जायगी। इस संस्था को पढ़ाई के स्तर, सामान की सुविधा आदि की दृष्टि से एक उच्च कोटि की संस्था बनाने का आयोजन किया जा रहा है।

श्री कृष्ण शर्मा जी ने फिजी में ८ मास रहकर महोत्सव को सफल बनाने में कोई प्रयत्न उठा न रखा। आर्य प्रतिनिधि सभा ने २०-११-५६ को श्री पंडित जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया।

नैरौबी (पूर्वीय अफ्रीका)

नैरौबी में आर्य समाज ५३ वर्ष से उत्तम कार्य कर रहा है। इस वर्ष भारत से श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री तथा श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज वहां प्रचारार्थ आए। गतवर्ष आर्य विद्वानों के अतिरिक्त उक्त समाज के तत्वावधान में ७ प्रसिद्ध महानुभावों के विविध विषयों पर व्याख्यान हुए जिनमें आनरेबुल चाननसिंह तथा हिजवर्शिप दी मेयर ऐल्ड-आई० सोमन के नाम विशेष उल्लेखनीय है। उक्त समाज ने ११४ वैदिक संस्कार कराए। समाज के अधीन एक आर्य कन्या पाठशाला है जिसमें २००० छात्राएं पढ़ती हैं। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। गत अगस्त में समाज का उत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। यहां आर्यवीर दल सुगठित है और सेवा कार्य बड़ी सफलता और उत्तमता से करता है। आर्य कुमार सभा की स्थापना करने, व्यायामशाला चलाने, साप्ताहिक सत्संगों के कार्यक्रम को ठोस बनाने तथा आध्यात्मिक बनाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है। बी० यन० शर्मा, मन्त्री

स्वदेश प्रचार

उड़ीसा

२२ नवम्बर को लोह नगरी रउर केला में हजारों की उपस्थिति में 'आर्य समाज दातव्य औषधालय' खोला गया है। औषधालय का उद्घाटन उड़ीसा के गृह मंत्री श्री सत्यप्रिय महान्ती द्वारा हुआ जिन्होंने सरकार की ओर से औषधालय के लिए स्थान दिलाया है। इस अवसर पर माननीय मंत्री महोदय को मान पत्र भी भेंट किया गया। उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"आदिवासी अनुन्नत जाति के लिए आर्य समाज का यह दान अत्यन्त प्रशंसनीय है। ऐसी धार्मिक संस्था से भारत को पूर्ण गौरव प्राप्त हो रहा है। इस संस्था को हम सरकार की ओर से सहायता दिलायेंगे और सरकार की दृष्टि इधर आकृष्ट करेंगे। यह औषधालय ईसाइयों की भांति सेवा के नाम पर धर्म परिवर्तन के काम में न आना चाहिये।"

यह औषधालय कचहरी के सामने है और पथ के निकट है तथा सरकार की ओर से स्थान दिया गया है। सरकारी भवन के ऊपर ओ३म् का झंडा लहरा रहा है। यह बड़े गौरव का विषय है। औषधालय के स्टाक और रोगियों की संख्या को देखकर माननीय मंत्री महोदय अवाक् रह गए। कलक्टर महोदय ने कहा आर्य समाज जैसे महान् अनुष्ठान के लिए यह सफलता असंभव नहीं है।

इन सबका श्रेय वेद व्यास आश्रम के श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द जी तथा अन्य आर्य सज्जनों को है जो सार्वदेशिक सभा की देखरेख में बड़ा उत्तम प्रचार कार्य कर रहे हैं।

Mischievous and dangerous method

of

Conversion to Buddhism.

[*Shri S. Chandra's Statement*]

Since the time of the death of Dr. Ambedkar, the methods adopted by the members of depressed classes by certain Budbhist Bhikkus f r the conversion to Budhhism have been described as mischievous and dangerous for the country by Shri S. Chandra, Asstt Secretary of the International Aryan League in the course of the following statement which he has issued to the press :

Recently the Hindustan Times of New Delhi published the report of its Bombay special correspondent that the funeral of Dr. Ambedkar was made the occasion for mass conversion to Budhism. The number of people converted to Budhism was estimated to be between 50,000 and 1½ laks. The conversion was conducted by Bhikku Anand Kausalyayan who administered the Diksha in Pali to the converts who were asked to recite Budhhist hymns. Thereafter they were given the following code of conduct in Hindi :

(1) We swear we shall not recognise any Hindu God or diety; (2) We swear we shall not worship any Hindu God or godess in any manner; (3) We denounce the worship of Hindu Gods like Rama, Krishna, Ganesh, Mahadeva and Satyanarain and (4) We swear we shall not perform any Hindu ceremonies like Satyanarain Puja, Mangla Gaur and Ganesh Puja. After this incident, Bhikku Anand Kausalayayan had similarly converted sixty thousand persons to Buddhism at Nasik.

The assertions, statements and actions of the late Dr. Ambedkar, his followers and Budhhist Bhikku Anand Kausalayayan seem to have created a situation fraught with mischief, danger and discord in the country in the name of Budhhism as a panacea for the removal of untouchability.

Till now the three verses were considered sufficient for a new Buddhist at the time of conversion:

(1) Budhham sarnam gachhami;

(2) Sangham sarnam gachhami;
(3) Dhammam sarnam gachhami.
This is true that the Budhhism is only a branch or a child of the eternal Arya Vedic Dharma. But the ways and methods adopted by the late Dr. Ambedkar and his followers and the introduction of a novel type of swearing at conversion ceremony have been conceived out of a bitter malice and are sure to create discord and animosity and embitter feelings betwe n the Hindus and the Buddhists—a most unfortunate thing.

It is one thing to reform an age-old practice by purging off any perversions that might have tainted it or to give it a scientific interpretation in the light of logic and rational thinking; but it is another to make a childish attempt to distroy the very existence of an ideal that has sustained millions of men for thousands of years.

For instance, the Aryas do not recognise Bhagwan Rama and Bhagwan Krishna as God incarnation nor do they worship their idols. But they do recognise them as personalities of the highest order and the greatest idealism and pay the highest regard even far greater than their Hindu so-called devotees, by addressing them as "Maryada Purshottam Bhagwan" and "Yogiraj Bhagwan" and worshipping their ideals instead of their idols. Similarly the Aryas recognise Ganesh, Mahadeva, Satyanarain etc. as the various names of One and the same God according to His attributes. Thus inspite of some external differences in certain matters the Aryas and Hindus are not only basically one and treat each other as kith and kin but the Hindus regard Aryas as the saviours and revivers of the primordial Arya Vedic Dharma.

I need hardly stress that the basic characteristics of Aryan culture and civilisation have been rationalism, lagic and catholicity. Dogmatic belief and exclusiveness have been foriegn to her nature Whatever might have been stated by Buddhists, the Hindus have never regarded Budhha or Buddhism as something foreign, opposed and inimical to them, so much so that Budhha has for centuries been placed by them among their long line of incarnation of God on earth. The spontaneous expression of love and enthusiasm on the part of Hindus for Buddha and Buddhism which has been seen unmistakably during the last ten

years in India must convince any one of the large-heartedness of the Hindus. But these new converts to Buddhism contrarily show the greatest disrespect to Mariyada Puroshottam Bhagwan Ram and Yogiraj Bhagwan Krishana, Vedas and Shastras. What an expression of ingratitude of the meanest type by these new Budhhists.

As regards untouchablity, it is totally against the Vedas and all other Shastras. The first herculean effort and struggle for eradicating this evil was made by the greatest reviver of the Aryan Human Religion Maharshi Swami Dayanand Saraswati which has been constantly pursued by his followers even at the cost of their lives. Mahatma Gandhi later gave a fillip to this mission and to-day it stands legally abolished from India. The day is not far off when untouchability shall be a thing of the past. It, therefore, remains to be seen as to what would be the position in this country of these people who get converted to Buddhism after dishonouring the greatest heroes, highest personalities, seers, sages and primordial scriptures of this land.

The conversion of these people to Budhism also raises a legal and technical question. If, after conversion, they discontinue to be recognised as depressed Government should not given them the special privileges and facilities offered to the depressed and if they still demand them, they are still depressed inspite of their conversion to Buddhism.

Therefore, it is in the interest of both, the Buddhist Bhikkus and converted Buddhists that they should not try to achieve their political and social. aspirations by opposing the great and the vast Aryan (Hindu) Nation and Religion, more especially in a country like India where there is perfect freedom to propogate one's religion without creating hatred. Some people should not take an undue advantage of the secular character of the Government. Everything has a limit.

मासिक-समाचार

२१ नवम्बर ५६ से २० दिसम्बर ५६ तक

[श्री निरंजन लाल गौतम]

२१ नवम्बर—ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल मिश्र से अपनी फोजें हटायें, हेमरशोल्ड की चेतावनी और आक्रांता देशों से राष्ट्र संघ के प्रस्ताव की अवज्ञा पर जवाब तलबी।

२२ नवम्बर—मिश्र से आक्रान्ता देशों की आंशिक फौजें हटाई गईं।

—१६ वें ओलंपियक खेलों का उद्घाटन। मेलबोर्न में ६६ देशों के४ ००० खिलाड़ियों की परेड।

२३ नवम्बर—मद्रास से १७० मील दूर अरिमालूर के पास पुल टूटने से हुई भयंकर रेल दुर्घटना में सैकड़ों मरे।

—भारतीय लोक सभा से फांसी की सजा समाप्त करने विषयक प्रस्ताव अस्वीकृत।

२४ नवम्बर—बुद्ध उपदेशों पर चलने से ही विश्व का कल्याण—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी का २५०० वें जयन्ती समारोह में भाषण।

२५ नवम्बर—अफ्रीकी एशियाई प्रस्ताव द्वारा मिश्र से आकान्ता देशों की फौजें तत्काल हटाने की मांग।

—काश्मीर का भारत में विलय पूर्ण और अन्तिम—लार्ड एटली के विचार।

२६ नवम्बर—रेल मन्त्री लाल बहादुर शास्त्री का अरिमालूर रेल दुर्घटना के प्रायश्चित के लिये अपने पद से त्याग पत्र दिया।

—राजधानी दिल्ली में विभिन्न देशों के बौद्ध नेताओं का आगमन।

२७ नवम्बर—भारतीय लोक सभा में अरिमालूर रेल दुर्घटना पर रेलवे बोर्ड की कटु आलोचना।

—मिश्र में राष्ट्र संघीय पुलिस सेना के लिये १ करोड़ डालर स्वीकार।

२८ नवम्बर—भारत की राजधानी में चीन के प्रधान मन्त्री चाऊ एन० लाई का आगमन। हवाई अड्डे पर चीन के प्रधान मन्त्री का भव्य स्वागत।

२९ नवम्बर—चीन के प्रधान मन्त्री चाऊ एन० लाई ने भारतीय लोक सभा में भाषण करते हुए बताया कि चीन भारत की मिश्र सम्बन्धी नीति का समर्थक है।

३० नवम्बर—चीन तथा भारत के प्रधान की मैत्री पूर्ण वार्ता के पश्चात् भारत चीन के महत्व की घोषणा।

—चाऊ एन० लाई के स्वागत में आयोजित विराट सभा में बम विस्फोट। उसी समय चांदनी चौक में भी बम फटा।

—पूंजीगत लाभ और विलास की वस्तुओं पर कर लगा – भारतीय लोक सभा का निश्चय।

१ दिसम्बर—हंगरी के प्रश्न में चीन और भारत के प्रधान मन्त्री एक मत नहीं फिर भी दोनों देशों का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय संकट को बढ़ाना नहीं। दिल्ली और पूना में चाऊ एन० लाई के वक्तव्य।

२ दिसम्बर—पाक प्रधान मन्त्री सोहरावर्दी

को भारत से आक्रमण का भय। सैनिक संधियों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न।

—सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में चार लाख व्यक्तियों ने स्नान किया।

—दलाई लामा और पंचम लामा का देहली में सार्वजनिक स्वागत।

३ दिसम्बर—ब्रिटेन तथा फ्रांस मिश्र से सेनायें हटाने को राजी हो गये।

—पाकिस्तान पहले अपनी सेनायें काश्मीर से हटाये—श्री नेहरू का सोहरावर्दी को करारा उत्तर।

—दिल्ली के उच्च पुलिस अधिकारियों में परिवर्तन।

—नेपाल के प्रधान मन्त्री का भारत में आगमन।

४ दिसम्बर—देहली में नेपाल के प्रधान मन्त्री टंका प्रसाद आचार्य का सार्वजनिक स्वागत।

—पाकिस्तान पर भारत आक्रमण नहीं करेगा अपितु पाकिस्तान थोड़ी बहुत गड़बड़ करना चाहता है, सोहरावर्दी का वक्तव्य इस ओर पूर्व सूचना के रूप में है—पं० नेहरू की राज्य सभा में घोषणा।

५ दिसम्बर—लोक सभा द्वारा केन्द्रीय बिक्री कर विधेयक स्वीकृत।

—बीमा कर्मचारियों की सांकेतिक हड़ताल। बम्बई तथा कलकत्ता में काम ठप्प।

—यूनेस्को का ऐतिहासिक दिल्ली अधिवेशन समाप्त।

—भारतीय लोक सभा में रेलवे बोर्ड की कड़ी आलोचना। पुलों की जांच के लिये समिति बनी।

६ दिसम्बर—भारत छठी बार ओलम्पियक खेलों में हाकी का विश्व विजयी घोषित। पाकिस्तान को भी १ गोल से हराया।

—डाक्टर भीमराव अम्बेदकर का अचानक देहावसान। संसद के दोनों सदनों द्वारा श्रद्धांजलि

७ दिसम्बर—भारत राष्ट्र मंडल का सदस्य बना रहेगा। राज्य सभा ने पण्डित नेहरू के विचारों का समर्थन कर दिया।

—अनाथालयों और विधवा आश्रमों को लाइसेंस लेना होगा। भारतीय लोक सभा में विधेयक स्वीकृत।

८ दिसम्बर—मेल बोर्न में १६ वां ओलम्पिक खेल ससमारोह समाप्त।

—सेठ गोविन्ददास की हीरक जयन्ती धूम-धाम से मनाई गई।

—नाप तोल में दशमलव प्रणाली लागू होगी भारतीय लोक सभा में विधेयक स्वीकृत।

९ दिसम्बर—हंगरी में पुनः देशव्यापी दंगे आरम्भ। देश में मार्शल ला घोषित।

—विश्व शान्ति के लिये भारत चीन की मैत्री आवश्यक—कलकत्ता में चाऊ एन० लाई की घोषणा।

—नागाओं ने आसाम में फिर सिर उठाया छुटपुट हमले आरम्भ।

१० दिसम्बर—काश्मीर के साधारण चुनाव १९५७ के आरम्भ में होंगे।

—कम्पनियों के साथ उदारता का व्यवहार होगा। उद्योग मन्त्री श्री कृष्णमाचारी की घोषणा।

—११ दिसम्बर—पाकिस्तान को काश्मीर का वर्तमान विभाजन स्वीकार—सोहरावर्दी की ढाका में बहक।

१२ दिसम्बर—लोक सभा द्वारा नये कर का प्रस्ताव स्वीकृत—योजना की पूर्ति के लिये हर प्रकार धन जुटाना सरकार का लक्ष्य।

१३ दिसम्बर—देश में आम चुनाव २५ फरवरी ५७ से १२ मार्च ५७ तक सम्पन्न होंगे।

१४ दिसम्बर—प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू का अमरीका के प्रधान आइजन हावर से मिलने

सूचनाएं तथा वैदिक धर्म्म प्रसार

उत्सव

आर्य स्त्री समाज (शिक्षा निकेतन) अम्बाला नगर का वार्षिकोत्सव २० से २६ नवम्बर ५६ तक बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। प्रथम तीन दिन तक श्री महात्मा आनन्द भिक्षु जी के नेतृत्व में प्रभात फेरी निकाली गई। प्रातः यजुर्वेद यज्ञ और रात्रि को महात्मा जी की कथा होती थी। इस अवसर पर संस्कृत सम्मेलन, महिला सम्मेलन नारी का राष्ट्र और समाज में क्या स्थान है? आदि २ कई सम्मेलन हुए। उत्सव में बाहर से आकर भाग लेने वालों में श्रीमती शकुन्तला गोयल श्रीमती प्रियम्वदा जी, श्रीमती सुवीरा जी दर्शनाचार्य श्री जगदीशचन्द्र जी शास्त्री, आचार्य टी० ए० बी० दीक्षित प्रधान मन्त्री, विद्या भवन बम्बई आदि २ महानुभावों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी अवसर पर श्री पूज्य स्वामी जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचारार्थ ५०१) की थैली भेंट की गई।

साविन्त्री देवी मन्त्रिणी

के लिये प्रस्थान। दोनों में महत्वपूर्ण मन्त्रणा।

—हिन्दू कोड बिल से सम्बद्ध सभी विधेयक स्वीकृत—पति को पत्नी से या पत्नी को पति से (जो भी कमाता हो) तलाक की अवस्था में गुजारे का धन प्राप्त करने का अधिकार। लड़की को भी लड़कों की तरह गोद लिया जा सकेगा।

१५ दिसम्बर—पण्डितनेहरू जी की अमरीका जाते समय मार्ग में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री ईडन से भेंट।

१६ दिसम्बर—पण्डित नेहरू वाशिंगटन (अमरीका) पहुंचे। दो महानतम लोकतन्त्र नायकों का मिलन। हवाई अड्डे पर भव्य स्वागत

१७ दिसम्बर—विश्व के दो महान् नेता—पण्डित नेहरू और आइजन हावर गेटिसवर्ग पहुंचे विश्व की महत्वपूर्ण समस्याओं पर वार्ता होगी।

१८ दिसम्बर—पण्डित नेहरू और आइजन हावर की एकान्तमें बातचीत। भारत को अमरीका से बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता की आशा।

—भारतीय रेल कर्मचारियों के लिये पेन्शन योजना लागू करने का विचार।

—अमरीकी हथियारों से भारत पर हमला नहीं किया जायगा। हाँ यदि पाकिस्तान पर हमला हुआ तो अमेरिकन हथियार वरते जायेंगे–सोहरावर्दी बोले।

१९ दिसम्बर—काश्मीर समस्या का मूल कारण पाकिस्तान का निर्लज्ज आक्रमण है। शांति के लिये पाकिस्तान पहले अपनी सेनायें काश्मीर से हटाये। अमरीकन पत्रकारों के बीच पण्डित नेहरू की स्पष्टोक्ति।

२० दिसम्बर—पाकिस्तान से जाली पार पत्र लेकर २५ हजार मुसलमान भारत में आये। कुछ व्यक्ति गिरफ्तार।

आर्य समाज पाटण का निर्वाचन

श्री छोटालालजी शर्मा--प्रधान
श्री पं० भगवानदेव जी गुरुकुलीय--मन्त्री

संस्कार

आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर के साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर २८-१०-५६ को श्री म० वेदव्रत जी के सुपुत्र चि० बलभद्र का मुण्डन संस्कार हुआ। संस्कार में लगभग ४०० व्यक्ति सम्मिलित हुए। रूढ़ियों से शून्य समाज मन्दिर में हुए इस संस्कार का यही विशेष महत्व था। इस अवसर पर उन्होंने २५) समाज को दान दिये।

--भूपालसिंह शास्त्री, मन्त्री

चरित्र निर्माण प्रचार

श्रीयुत बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट उपप्रधान सार्वदेशिक सभा ने १८ से २७ नवम्बर तक मध्य भारत का भ्रमण किया। १८, १६, २० ता० को लशकर में मराठा बोर्डिङ्ग हाउस,जियाजी राव मिल स्कूल में तथा ३ व्याख्यान आर्य समाज लश्कर और ग्वालियर में दिये गये। २२ और २३ तारीख को उज्जैन में ४ भाषण हुए। २४, २५ को भूपाल में इन्टर कालेज, कन्या इन्टर कालेज, ट्रेनिंग कालेज तथा आर्य समाज में ७ व्याख्यान हुए। गूना से भूपाल तक श्रीयुत बाबूलाल जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यभारत बाबू जी के साथ रहे। इन्दौर में २६ व २७ नवम्बर २ दिन लगाये गये। २ व्याख्यान संस्थाओं में और ३ व्याख्यान आर्य समाज मल्हार गंज, दयानन्द नगर व संयोगिता गंजमें हुवे प्रतिज्ञा पत्र भरवाने पर भी बल दिया गया।

वैदिक वाचनालय

आर्य समाज पाटण में वैदिक वाचनालय की स्थापना की गई। २०-२१ दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक हिन्दी गुजराती आदि के पत्र आते हैं। नगर के निवासी विशेषतः विद्यार्थी इससे अधिक लाभ उठाते हैं।

उमाशंकर, उपमन्त्री

विद्यार्य सभा

सार्वदेशिक सभान्तर्गत आर्य विद्या सभा के मन्त्री श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए० ने एक प्रेस वक्तव्य द्वारा आर्य सदस्यों,आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्यों, उपदेशकों, आर्य ग्रन्थकारों तथा प्रकाशकों को प्रेरणा की है कि वे भारतवर्ष के समस्त विद्यालयों के पाठ्यक्रम में आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति के अनुकूल पुस्तकों को सम्मिलित कराने के आंदोलन में विद्या सभा को हर प्रकार का पूरा २ योग दें। मौखिक तथा लिखित प्रचार के अतिरिक्त ऐसे साहित्य के निर्माण का भी शीघ्र प्रयास करें। श्री आचार्य जी ऐसी पुस्तकों की सूची तैयार कर रहे हैं जो स्कूलों एव कालेजों में लगवाई जा सकें। लेखकों तथा प्रकाशकों को अपनी तथा अन्यों की उपादेय कृतियों की सूची "गुप्ता बिल्डिंग, वाटरवर्क्स रोड लखनऊ" के पते पर आचार्य जी के पास शीघ्र भेज देनी चाहिये। सूची में पुस्तक का नाम, लेखक, प्रकाशक, मूल्य, विषय, कक्षा जिसके उपयुक्त हो आदि २ विवरण अवश्य होना चाहिये। जिन प्रचलित पाठ्य पुस्तकों में आर्य समाज, स्वामी दयानन्द और आर्य संस्कृति के विरुद्ध जो अंश हों वे भी आचार्य जी के पास पूरे विवरण सहित भेज दिये जायें ताकि उनके सुधार वा निराकरण का यत्न किया जा सके।

'आर्यावर्त्त' नया बाजार लश्कर (मध्यभारत) का श्रद्धानन्द बलिदान अङ्क

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत के मुख पत्र आर्यावर्त्त का उपर्युक्त विशेषांक १ जनवरी को निकल रहा है। यह अंक देश के प्रसिद्ध नेताओं लेखकों तथा विद्वानों के सन्देशों, लेखों और श्रद्धांजलियों से परिपूर्ण होगा। विशेषांक का मूल्य १), पृ० सं० १०० होगी। वार्षिक मूल्य ३), ग्राहकों को उसी मूल्य में मिलेगा। अंक को स्थायी महत्व की चीज बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

आर्य विवाहों की योजना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्रीयुत ला० रामगोपाल जी ने आर्य परिवारों की सुविधा और सहायता के लिए विवाह योग्य सुयोग्य लड़कों और लड़कियों का सभा कार्यालय में पूरे विवरण रखने का प्रबन्ध किया है। उन विवरणों के द्वारा जात पांत तोड़ कर गुण कर्मानुसार विवाह करने वालों को सहायता दी जायगी। आर्य परिवारों के लड़के और लड़कियों के अभिभावकों को ये विवरण शीघ्र ही सभा कार्यालय में भेज देने चाहियें। विवरण हर प्रकार से पूरे होने चाहियें अधूरे वा असत्य नहीं। परिवार के पूर्ण परिचय के अतिरिक्त लड़कों और लड़कियों के नाम, शिक्षा, आयु, सर्विस, जन्म के वर्ण आदि का पूर्ण विवरण अंकित होना चाहिये।

वेदों का सरल अनुवाद

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्रीयुत पं०इन्द्रजी विद्यावाचस्पतिने एक प्रेस वक्तव्य में कहा है कि सार्वदेशिक सभा ने सर्व सामान्य जनताके लाभार्थ चारों वेदों का सरल हिंदी अनुवाद करनेका आयोजन किया है,आर्यभाषामें प्रकाशित हो जाने पर वही अनुवाद संसार की अन्य भाषाओं में धीरे २ प्रकाशित किया जायगा। सार्वदेशिक सभान्तर्गत दयानन्द वाटिका देहली स्थित वैदिक अनुसन्धान विभाग में यह कार्य हो रहा है। प्रसिद्ध वेदज्ञ श्रीयुत पं० विश्वनाथ जी की देख रेख में ऋग्वेद और सामवेद का अनुवाद प्रारम्भ किया गया है। छपने से पूर्व सार्वदेशिक सभा द्वारा नियुक्त विद्वानों की एक समिति से उसका निरीक्षण कराके स्वीकृति प्राप्त की जायगी। वेद मन्त्र और उसके नीचे अर्थ, अनुवाद का यह क्रम रखा गया है। यह कार्य अधिक श्रम और धन साध्य है। श्री प्रधान जी प्रत्येक आर्य नर नारी से आशा रखते हैं कि वे इस कार्य में सभा को अपना पूरा आर्थिक योग देंगे। पारिवारिक समारोहों, संस्कारों आदि अवसरों पर वेद के अनुवाद के लिए धन निकाल कर सभा में भेजना पवित्र कर्तव्य समझा जायगा।

शोक प्रस्ताव

श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज के निधन पर निम्नांकित समाजों और संस्थाओं के शोक प्रस्ताव पास हुए हैं :—

(१) आर्य स्त्री समाज मेरठ शहर (२) आर्य समाज बिरला लाइन्स देहली (३) किशन पोल जयपुर (४) रामगंज अजमेर (५) आर्य स्त्री समाज अम्बाला शहर (६) अल्मोड़ा (७) गुरुकुल कांगड़ी।

हमारे द्वारा प्रकाशित साहित्य

[एक दृष्टि में]

(जिन पुस्तकों के आगे मूल्य नहीं लिखा वे समाप्त हो गई हैं। इनके पुनः छपाने की व्यवस्था की जायेगी)

आचार्य भगवानदेव जी द्वारा लिखित—

१-ब्रह्मचर्यामृत—
साधारण संस्करण
बाल संस्करण
२-ब्रह्मचर्य के साधन—
भाग १-२। प्रातः जागरणादि।
भाग ३-दंत रक्षा।
भाग ४-व्यायाम। १)
भाग ५-स्नानादि। ।≈)
भाग ६-प्राणायाम। छपेगा
भाग ७-८। स्वाध्याय सत्संग। ॥)
भाग ९-भोजन। ॥≈)
भाग १०-निद्रा छपेगा
भाग ११-सामान्य नियम। ,,
३-व्यायाम का महत्व। ≡)
४-स्वप्नदोष की चिकित्सा। ≈)॥
५-पापों की जड़ शराब ... ...
साधारण संस्करण। ≈)॥
बाल संस्करण। ।—)
६-तम्बाकू का नशा ....
साधारण संस्करण। समाप्त
बाल संस्करण। ।≈)
७-बाल विवाह से हानियां। समाप्त
८-बिच्छू विष चिकित्सा। ≈)
९-नेत्र रक्षा ≡)
१०-रामराज्य कैसे हो। ≡)

स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा लिखित—

११-वैदिक गीता। ३)
१२-मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प। समाप्त
१३-आदर्श ब्रह्मचारी। ।)
१४-कन्या और ब्रह्मचर्य। ≡)

स्वामी वेदानन्द जी द्वारा लिखित—

१५-स्वामी विरजानन्द का जीवन चरित्र १॥)
१६-संस्कृतांकुर। १।)
१७-संस्कृत कथा मंजरी। ।—)
१८-हम संस्कृत क्यों पढ़ें। ।≈)
१९-श्रुति सूक्ति शती। ≡)

पं० जगदेवसिंह 'सिद्धान्ती' द्वारा लिखित—

२०-वैदिक धर्म परिचय। ॥≈)
२१-छात्रोपयोगी विचारमाला। ॥≈)
२२-संस्कृत वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय ... ॥)

अन्य विद्वानों द्वारा लिखित—

२३-स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी २)
२४-विदेशों में एक साल। २।)
२५-दृष्टान्त मंजरी। २)
२६-आर्य सिद्धान्त दीप। १।)
२७-कर्त्तव्य दर्पण। समाप्त
२८-ब्रह्मचर्य शतकम। ॥≈)
२९-आसनों के व्यायाम। ॥)
३०-सदाचार पंजिका। ॥)
३१-यू० पी० चकबन्दी कानून। ॥)
३२-कश्मीर यात्रा। ।)
३३-हित की बातें —)॥
३४-स्वामी आत्मानन्द की संक्षिप्त जीवनी —)
३५-महर्षि दयानन्द का कार्य। —)
३६-दयानन्द और गोरक्षा। —)॥
३७-आर्यसमाज की आवश्यकता (छोटी) —)
३८-आर्यसमाज की आवश्यकता (बड़ी) ।)
३९-आर्य समाज के नियमोपनियम। ≈)
४०-आर्यकुमार गीतांजलि ....
भाग १ ≡)
भाग २ ≡)
४१-क्या हम आर्य हैं। —)
४२-श्रुति सुधा। ≡)
४३-स्वामी श्रद्धानन्द। समाप्त
४४-वैदिक संध्या पद्धति। समाप्त
४५-वैदिक संध्या हवन पद्धति। समाप्त
४६-वैदिक सत्संग पद्धति। ।≈)
४७-आर्योद्देश्य रत्नमाला। —)
४८-पंजाब की भाषा और लिपि। —)

वैदिक साहित्य सदन
आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, दिल्ली-६

सार्वदेशिक पत्र (हिन्दी मासिक)

ग्राहक तथा विज्ञापन के नियम

१. वार्षिक चन्दा—स्वदेश ५) और विदेश। १० शिलिङ्ग। अर्द्ध वार्षिक ३) स्वदेश, ६ शिलिङ्ग विदेश।

२. एक प्रति का मूल्य ।।) स्वदेश, ।।=) विदेश, पिछले प्राप्तव्य अङ्क वा नमूने की प्रति का मूल्य ।।=) स्वदेश, ।।।) विदेश।

३. पुराने ग्राहकों को अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करके अपनी ग्राहक संख्या नई करानी चाहिये। चन्दा मनीआर्डर से भेजना उचित होगा। पुराने ग्राहकों द्वारा अपना चन्दा भेजकर अपनी ग्राहक संख्या नई न कराने वा ग्राहक न रहने की समय पर सूचना न देने पर आगामी अङ्क इस धारणा पर वी० पी० द्वारा भेज दिया जाता है कि उनकी इच्छा वी० पी० द्वारा चन्दा देने की है।

४. सार्वदेशिक नियम से मास की पहली तारीख को प्रकाशित होता है। किसी अङ्क के न पहुँचने की शिकायत ग्राहक संख्या के उल्लेख सहित उस मास की १५ तारीख तक सभा कार्यालय में अवश्य पहुँचनी चाहिए, अन्यथा शिकायतों पर ध्यान न दिया जायगा। डाक में प्रति मास अनेक पैकेट गुम हो जाते हैं। अतः समस्त ग्राहकों को डाकखाने से अपनी प्रति की प्राप्ति में विशेष सावधान रहना चाहिये और प्रति के न मिलने पर अपने डाकखाने से तत्काल लिखा पढ़ी करनी चाहिये।

५. सार्वदेशिक का वर्ष १ मार्च से प्रारंभ होता है अंक उपलब्ध होने पर बीच वर्ष में भी ग्राहक बनाए जा सकते हैं।

विज्ञापन के रेट्स

	एक बार	तीन बार	छः बार	बारह बार
६. पूरा पृष्ठ (२०×३०)	१५)	४०)	६०)	१००)
आधा " "	१०)	२५)	४०)	६०)
चौथाई ,,	६)	१५)	२५)	४०)
⅛ पेज	४)	१०)	१५)	२०)

विज्ञापन सहित पेशगी धन आने पर ही विज्ञापन छापा जाता है।

७. सम्पादक के निर्देशानुसार विज्ञापन को अस्वीकार करने, उसमें परिवर्तन करने और उसे बीच में बन्द कर देने का अधिकार 'सार्वदेशिक' को प्राप्त रहता है।

—व्यवस्थापक

'सार्वदेशिक' पत्र, देहली ६

आर्य समाज का इतिहास

(प्रथम भाग) सचित्र

(लेखक—आर्य जगत् के सम्मान्य नेता एवं हिन्दी जगत् के सुसिद्ध संपादक और साहित्यकार श्रीयुत् पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति)

(सार्वदेशिक सभा द्वारा नियुक्त विद्वानों की समिति द्वारा प्रमाणित)

प्रकाशक-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, श्रद्धानन्द बलिदान भवन, देहली ६

प्रथम भाग छप कर तैयार

आकार $\frac{१८ \times २२}{८}$ पृष्ठ संख्या ४५० मूल्य ६)

विशेषताएं

१—लगभग २५ लाइन ब्लाक होंगे।

२—लगभग १२ परिशिष्ट हैं जो महर्षि की जन्म तिथि, आर्य समाज स्थापना दिवस तिथि, महर्षि की मृत्यु कैसे हुई इत्यादि २ विवादास्पद विषयों पर मूल्यवान सामग्री से परिपूर्ण है।

इतिहास की सामग्री

प्रारम्भ से सन् १९०० तक। आर्य समाज की स्थापना से पहले की धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति का निदर्शन, महर्षि दयानन्द का आगमन, आर्य समाज की स्थापना, प्रचार युग, अन्य मतों से संघर्ष, संगठन का विस्तार, संस्था युग का आरम्भ आदि २।

संग्रह करने योग्य ग्रन्थ

यह ग्रन्थ प्रत्येक आर्य समाजस्थ पुरुष और स्त्री के पढ़ने योग्य और आर्य-समाजों तथा संस्थाओं के पुस्तकालयों में रखने योग्य है। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में भी उपयोग योग्य ग्रन्थ है।

रियायत

वसन्तोत्सव तक आर्डर भेजने वालों को ५) में (रजिस्ट्री डाक व्यय पृथक) और उसके बाद ६) में दिया जायगा। मूल्य तथा डाक व्यय के लिये ६॥) भेजें।

रामगोपाल, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
श्रद्धानन्द बलिदान भवन, देहली-६

चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज दिल्ली—७ में छपकर रघुनाथ प्रसाद जी पाठक प्रकाशक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली-से प्रकाशित।